॥ श्रीः ॥

विद्याभवन संस्कृत ग्रन्थमाला

६

श्रीजगदीशभट्टाचार्यविरचितं

तर्कामृतम्

'प्रकाश' संस्कृत-हिन्दीभाषानुवाद-

'परीक्षासेतु' परिशिष्टैश्च विभूषितम्

अनुवादकः—

आचार्यः श्रीरामचन्द्रमिश्रः

रांचीस्थ-राजकीयसंस्कृतमहाविद्यालयाध्यापकः

Jain SW ASTI,
Publi... of Sanskrit Books
S... Puri-752002.

चौखम्बा विद्याभवन

वा रा ण सी २२१००१

॥ श्रीः ॥

विद्याभवन संस्कृत ग्रन्थमाला

६

श्रीजगदीशभट्टाचार्यविरचितं

तर्कामृतम्

'प्रकाश' संस्कृत-हिन्दीभाषानुवाद-
'परीक्षासेतु' परिशिष्टैश्च विभूषितम्

अनुवादकः—

आचार्यः श्रीरामचन्द्रमिश्रः

रांचीस्थ-राजकीयसंस्कृतमहाविद्यालयाध्यापकः

चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी-१

प्रकाशक

चौखम्बा विद्याभवन

(भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के प्रकाशक एवं वितरक)

चौक (बनारस स्टेट बैंक भवन के पीछे)

पो० बा० नं० १०६९, वाराणसी २२१००१

दूरध्वनि : ६३०७६

सर्वाधिकार सुरक्षित

चतुर्थ संस्करण १९९०

मूल्य १०-००

अन्य प्राप्तिस्थान

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन

के० ३७/११७, गोपालमन्दिर लेन

पो० बा० नं० ११२९, वाराणसी २२१००१

*

चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान

३८ यू. ए., जवाहरनगर, बंगलो रोड

दिल्ली ११०००७

दूरध्वनि : २३६३९१

मुद्रक—

श्रीजी मुद्रणालय

वाराणसी

THE
IDYABHAWAN SANSKRIT GRANTHAMALA
6

TARKĀMṚTAM

OF

JAGADĪSHA BHAṬṬĀCHARYA

EDITED WITH

THE PRAKĀŚA SANSKRIT AND HINDĪ
COMMENTARIES AND NOTES.

BY

ĀCHĀRYA RĀMCHANDRA MISHRA
Professor, Government Sanskrit College
Ranchi.

M/s. SWASTI,
Publisher & Promotor of Sanskrit Books
Sharadhabali, Puri-752002.

THE
CHOWKHAMBA VIDYABHAWAN
VARANASI-1

प्रस्तावना

इस ग्रन्थ को अधिकारियों ने यत्र यत्र परीक्षाओंमें पाठ्य पुस्तकके रूपमें निर्धारित किया है। इस ग्रन्थ को भलीभाँति पढ़ लेने पर विद्यार्थियों को स्वाध्येय शास्त्र में रहस्योद्घाटन की क्षमता प्राप्त हो सकेगी, ऐसी आशा है।

इस ग्रन्थके रचयिता—महामहोपाध्याय जगदीशभट्टाचार्य हैं। ये जगदीश अनुमान खण्डके प्रसिद्ध पण्डित 'शब्दशक्तिप्रकाशिका' 'जागदीशी चिन्तामणिटीका' आदिके रचयिता ही हैं या और कोई? इस विषयमें अधिक सन्देहकी संभावना है। जहाँ तक मेरा अनुमान है प्रस्तुत ग्रन्थके रचयिता कोई अन्य जगदीश महाशय हैं। चाहे जो हों, इनका यह ग्रन्थ इनकी विद्वत्ता तथा संक्षेपमें संग्रहणसामर्थ्य का प्रमापक है। मेरा विचार है कि इस ग्रन्थको छोटा देखकर नहीं, किन्तु इसके पदार्थ-प्रतिपादन-प्रकारको देखकर यदि श्रेणी निर्धारित की जाय तो यह 'तर्कामृत' स्वसजातीय ग्रन्थों में मुख्य स्थान ग्रहण करेगा।

इसकी यह संस्कृत व्याख्या तथा हिन्दी अनुवाद विद्यार्थियों के ही उपकारार्थ तैयार किया गया है, अतः यथासम्भव उन्हें संक्षिप्त तथा सरल करने की चेष्टा की गई है। दर्शन की भाषा का हिन्दी अनुवाद विस्तृ होने पर ही सरल हो पाता है यह मैं मानता हूँ, फिर भी मैंने इसे स बनाने में भरपूर प्रयत्न किया है। संस्कृत टीका तथा विशेष में कुछ अपेक्षि तथा मूलानुक्त विषयों को समाविष्ट करके अन्तमें 'परीक्षासेतु' ना परिशिष्ट भी जोड़ दिया गया है, जिससे जिज्ञासुओं को विशेष लाभ परीक्षार्थियों को अभ्यास में सौकर्य होगा।

मकरसंक्रान्ति
रांची, २०११

विनीत—
रामचन्द्र

॥ श्रीः ॥

तर्कामृतम्

'प्रकाश' संस्कृत-हिन्दीभाषानुवादयुतम्

ब्रह्माद्या निखिलार्चितास्त्रिदशसन्दोहाः सदाभीष्टदा
अज्ञानप्रशमाय यत्र मनसो वृत्तिं समस्तां दधुः ।
श्रीविष्णोश्चरणाम्बुजं भवभयध्वंसैकबीजं परं
हृत्पद्मे विनिधाय तन्निरुपमं तर्कामृतं तन्यते ॥ १ ॥

* प्रकाशः *

श्रद्धानतेन शिरसा पितरं 'मधुसूदनम्' ।
प्रसूं 'जयमणिं' चाहं प्रणमामि पुनः पुनः ॥

अन्वयः—निखिलार्चिताः सदाभीष्टदाः ब्रह्माद्याः त्रिदशसन्दोहाः अज्ञानप्रशमाय यत्र मनसः समस्ताम् वृत्तिम् दधुः भवभयध्वंसैकबीजम् श्रीविष्णोः चरणाम्बुजद्वयम् हृत्पद्मे विनिधाय (मया जगदीशभट्टाचार्येण) निरुपमम् तर्कामृतम् तन्यते ।

व्याख्या—निखिलार्चिताः सर्ववन्दिताः सदा सर्वदा अभीष्टदाः कामनाविषयार्थप्रदातारः ब्रह्माद्याः विरञ्चिप्रभृतयः त्रिदशसन्दोहाः देवगणाः अज्ञानप्रशमाय अज्ञाननिवृत्तये यत्र यस्मिन् विष्णुचरणद्वये मनसः स्वहृदयस्य समस्ताम् सम्पूर्णाम् वृत्तिम् व्यापारम् (प्रवणीभावम्) दधुः चक्रुः, तत् पूर्वोक्तप्रकारम् भवभयध्वंसैकबीजम् संसारभीतिनिवर्तनैककारणम् श्रीविष्णोः चरणाम्बुजद्वयम् पादकमलयुगलम् हृत्पद्मे स्वान्तसरोरुहे विनिधाय स्थापयित्वा (मया जगदीशभट्टाचार्येण) निरुपमम् दृष्टान्तरविरहितम् तर्कामृतम् तदाख्यम् पुस्तकम् तन्यते विस्तार्यते क्रियत इत्यर्थः ।

अयमाशयः—सर्वजनवन्दनीयाः सदाकामनापूर्त्तिप्रथिताश्च विधातृप्रभृतयो देवाः अज्ञाननिवृत्तिहेतवे विष्णोर्यच्चरणकमलयुगलं सर्वात्मना समाश्रयन्ति, सांसारिककष्टनिवृत्तये श्रियमाणं तच्चरणयुगलद्वयं चित्तेऽवस्थाप्याहं जगदीशभट्टाचार्योऽनितरसाधारण-

मत एव च सम्भाव्यमानोपकारकभावं तर्कामृतं नाम संक्षिप्तं न्यायग्रन्थं विरचयामीति ॥

अनुवाद—सकलजनवन्दित तथा सदा अभीष्टपूर्त्ति करनेवाले ब्रह्मा आदि देवगण अज्ञाननाशके लिये जिन पर समस्त मनोयोग स्थिर किया करते हैं, सांसारिक भयके निवर्त्तक भगवान्के उन चरणकमलोंको स्वहृदय सरोजमें अवस्थापित करके मैं अनुपम यह तर्कामृत नामक ग्रन्थ बनाता हूँ ॥ १ ॥

विशेष—वृत्ति शब्दसे यहाँ प्रणिधान या प्रवणता जिसे सततौन्मुख्य भी कहा जा सकता है, लिया जाता है, उसीके द्वारा ईश्वर की चिन्ता की जाती है जिससे संसार निवृत्ति होती है जो उत्तम पुरुषार्थ माना जाता है। 'विष्णु' पदका 'वेवेष्टीति विष्णुः' ऐसा अर्थ करके ईश्वरसे तात्पर्य है एक देव विशेषसे नहीं। यदि विष्णुसे एक देवता मात्र लिये जांय जो वह ब्रह्माके समकक्ष ही होंगे, वन्द्य नहीं। ईश्वर-चिन्तन द्वारा संसारके आवागमनसे छुटकारा पाना परमपुरुषार्थ माना गया है। इस ग्रन्थको निरुपम इसलिये कहा गया है कि यह छोटा होकर भी सकल पदार्थ का स्पष्ट तथा निर्दुष्ट प्रतिपादन करता है, अन्य ग्रन्थोंकी अपेक्षया सरल तथा असन्दिग्ध भी है। 'तन्यते' से यह तात्पर्य है कि संक्षिप्तरूपसे हृदयमें वर्त्तमान इस ग्रन्थको लिपिबन्धरूप विस्तृतरूप दिया जाता है। 'त्रिदशसन्दोहाः' यहाँ यतिभङ्ग है ॥ १ ॥

अथ श्रुतिः श्रूयते--'आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः' इति। (बृह० उप० २ अध्या० ब्राह्म० ५ मन्त्रः) अस्यार्थः—मुमुक्षुणा आत्मा द्रष्टव्यः, मुमुक्षोरात्मदर्शनमिष्टसाधनमिति यावत्। आत्मदर्शनोपायः कः? इत्यत्राह—'श्रोतव्य' इत्यादि। तेन आर्थक्रमेण शब्दक्रमस्त्यक्तो भवति, 'अग्निहोत्रं जुहोति' 'यवागूं पचति' इत्यादिवत्। तथा च श्रवणमननिदिध्यासनानि तत्त्वज्ञानजनकानीत्युक्तं भवति। अत्र श्रुतितः कृतात्मश्रवणस्य मननेऽधिकारः, मननश्च आत्मन इतरभिन्नत्वेनानुमानम्, तच्च भेदप्रतियोगीतरज्ञानसाध्यम्, तथा चेतरदेव कियत्? इत्यतेदर्थं पदार्थनिरूपणम्।

व्याख्या—आत्मा वा इत्यत्र वैशब्दस्यायादेशो यलोपश्च। द्रष्टव्य इत्यत्र विधावर्थे कृत्यप्रत्ययस्तस्य चेष्टसाधनत्वमर्थस्तत्फलितमाह—मुमुक्षोरात्मदर्शनमिति। त्यादि०। आर्थक्रमेणेति०। अयमाशयः—'यथाऽग्निहोत्रं जुहोति' 'यवागूं पचती'ति वाक्ययोः शाब्दक्रमेणानुष्ठाने प्रागग्निहोत्रं विधीयेत परतो यवागूः पच्येत, तथा सति यवागूपाको व्यर्थोऽदृष्टार्थो वा स्यात्। दृष्टफलसम्भवेऽदृष्टार्थत्वकल्पनं च नोचितमिति शब्दक्रममनादृत्यार्थक्रमः स्वीक्रियते, ततश्च पूर्वं यवागूपाकस्ततोऽग्निहोत्रं यवाग्व

सम्पन्नं भवति, तथैवात्रापि 'द्रष्टव्यः' 'श्रोतव्यः' इत्यादिकयोः पूर्वं श्रवणं मननं निदिध्यासनं च साधनत्वेनापेक्ष्यं परतः साध्यभूतमात्मदर्शनमिति शब्दक्रममनादृत्यार्थक्रमः स्वीक्रियत इति । श्रवणादिक्रमाभिधित्सयाह—अत्रेति० । इतरभिन्नत्वेनेति०-'अत्र तृतीयायाः प्रकारार्थतया इतरभिन्नप्रकारमात्मानुमानं विवक्षितम्, तच्च—'आत्मा इतरभिन्नः' इत्याकारकं बोध्यम् । भेदप्रतियोगीतरज्ञानसाध्यम् = यत्प्रतियोगिको भेद आत्मनि साध्यस्तज्ज्ञानसम्पाद्यम् ।

अनुवाद—श्रुति में लिखा है 'आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः' इसका तात्पर्य यह है कि मोक्षकी इच्छा रखनेवाला आत्मदर्शन करे, अर्थात् मुमुक्षुके लिये आत्मदर्शन इष्टसाधन है । आत्मदर्शनका उपाय-साधन क्या है ? इसका उत्तर दिया है—'श्रोतव्यः' इत्यादि । यहां पर आर्थक्रम लिया जाता है, शाब्दक्रम नहीं । अर्थात् पहले श्रवणादि होगा पीछे आत्मदर्शन । जैसे—'अग्निहोत्रं जुहोति' यवागूं पचति' यहां पर यदि शब्दक्रमका आदर हो तब तो पहले अग्निहोत्र होगा पीछे यवागूपाक । परन्तु वस्तुस्थिति ऐसी है कि यवागूपाकसे पूर्व अग्निहोत्र होगा कैसे ? क्योंकि उसीसे तो अग्निहोत्र होगा । अतः अर्थवश प्राप्त आर्थक्रमका ही आदर करके पहले यवागूपाक होता है । उसी तरह आत्मदर्शनके लिये आत्माका श्रवण, मनन, निदिध्यासन विहित है । अतः श्रवणादिके बाद आत्मदर्शन होगा यह सिद्ध हुआ । इसलिये यह कहना चाहिये कि श्रवण, मनन और निदिध्यासन तत्त्वज्ञान के जनक हैं । श्रुतिवाक्यों द्वारा जिसने श्रवण किया है वह मननमें अधिकारी है, एवं क्रम है । मनन शब्द का अर्थ है आत्माका इतरभिन्नत्वेन अनुमान । वह अनुमान भेदप्रतियोगी इतरोंके ज्ञानके बाद होगा, उसमें इतर कितने हैं ? इसीका निर्णय करनेके लिये पदार्थका निरूपण आवश्यक है ।

विशेष—'आत्मा' महर्षि वाज्ञवल्क्यने अपनी पत्नी मैत्रेयीसे यह उपदेश दिया था । यहां 'श्रोतव्यः' से कानसे सुनना ही केवल विवक्षित नहीं है किन्तु शाब्दबोधात्मक ज्ञान तक अभिप्रेत है । 'श्रुतितः०' श्रवण श्रुतिवाक्योंसे किया जाता है, लिखा है—'श्रोतव्यः श्रुतिवाक्येभ्यो मन्तव्यश्चोपपत्तिभिः । मत्वा च सततं ध्येय एते दर्शनहेतवः' ॥ इतरभिन्नत्वप्रकारक आत्मानुमानका आकार होगा—'आत्मा इतरेभ्यो भिद्यते आत्मत्वात् यदितरेभ्यो न भिद्यते न तत् आत्मत्ववत् यथा घटादिः, न चायं तथा' । भेदप्रतियोगीतरज्ञान—अभावज्ञानमें प्रतियोगिज्ञानको कारणता है, अतः अन्योन्याभावरूपभेदज्ञानमें प्रतियोगिज्ञान अपेक्षित होगा । ऐसी दशामें 'आत्मा इतरेभ्यो भिद्यते' इस प्रकारके अनुमानमें प्रतियोगितया अपेक्षित इतरका ज्ञान आवश्यक होगा । इतना दूरतकका ग्रन्थ प्रयोजनादि—प्रतिपादक उपोद्घात ग्रन्थ है । विषय—तत्त्वज्ञान, फल-मोक्ष, अधिकारिगण मुमुक्षुजन, प्रतिपाद्यप्रतिपादकभाव सम्बन्ध, यही प्रयोजनादि जानना चाहिये ।

संक्षेपतः पदार्थो द्विविधः—भावोऽभावश्च। भावः षड्विधः—द्रव्य-गुण कर्म-सामान्य-विशेष-समवायभेदात्। तत्र द्रव्यत्वगुणत्वकर्मत्वानि जातयः, सामान्यत्वादीन्युपाधयः। द्रव्याणि नव-पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशकालदिगात्ममनांसि। आकाशत्वकालत्वदिक्त्वान्युपाधयः। अन्यानि जातयः।

व्याख्या—पदार्थं विभजते—द्विविध इति। भावत्वेन अभावत्वेन च अवान्तरविभाजकोपाधिना पदार्थानां द्वैविध्यं स्वीक्रियत इत्यर्थः। जातयः—जातिलक्षणयोगित्वात्। तत्सिद्धिप्रकारोऽत्रैव विशेषे। उपाधयः—अखण्डोपाधयः, न तु जातयस्तदुपपत्त्यभावात्। अत्रत्यो विशेषो—'व्यक्तेरभेदः' इत्यादिकारिकाव्याख्यावसरे वक्ष्यते।

विशेष—द्विविध शब्द में 'द्वे विधे यस्य' यह समास है, द्विविध शब्द का अर्थ हुआ अवान्तर-विभाजकोपाधिद्वयविशिष्ट। यहाँ अवान्तरविभाजक उपाधियाँ होंगी भावत्व और अभावत्व। द्रव्यत्व—संयोगविभागसमवायिकारणतावच्छेदकतया सिद्ध जाति है। इसी तरह गुणपदशक्यतावच्छेदकतया गुणत्व जाति तथा चलतीत्यनुगतप्रत्ययविषयतया कर्मत्व जाति सिद्ध की जाती है।

तत्र रूपरसगन्धस्पर्शसङ्ख्यापरिमाणपृथक्त्वसंयोगविभागपरत्वापरत्वगुरुत्वद्रवत्वसंस्काराश्चतुर्दश गुणाः पृथिव्याम्।

तत्रैव गन्धं विहाय स्नेहं विनियोज्य चतुर्दश गुणा जलस्य।

रूपस्पर्शसंख्यापरिमाणपृथक्त्वसंयोगविभागपरत्वापरत्वद्रवत्वसंस्कारा एकादश गुणास्तेजसः।

स्पर्शसङ्ख्यापरिमाणपृथक्त्वसंयोगविभागपरत्वापरत्वद्रवत्वसंस्कारा नव गुणा वायोः।

शब्दसङ्ख्यापरिमाणपृथक्त्वसंयोगविभागाः षड्गुणा आकाशस्य।

सङ्ख्यापरिमाणपृथक्त्वसंयोगविभागबुद्धिसुखदुःखेच्छाद्वेषप्रयत्नधर्माधर्मसंस्काराश्चतुर्दशगुणा आत्मनः।

सङ्ख्यापरिमाणपृथक्त्वसंयोगविभागपरत्वापरत्वसंस्कारा अष्टौ गुणा मनसः।

ज्ञानेच्छाकृतिसङ्ख्यादिपञ्चकम् अष्टौ गुणा ईश्वरस्य। तथा च—

'वायोर्नवैकादश तेजसो गुणा जलक्षितिप्राणभृतां चतुर्दश।
दिक्कालयोः पञ्च षडेव चाम्बरे महेश्वरेऽष्टौ मनसस्तथैव च'॥

अनुवाद—द्रव्य नव प्रकारके हैं यह कह आये हैं। द्रव्यका लक्षण है 'गुणाश्रयत्व' गुणों के आश्रय द्रव्य ही होते हैं, अतः अवसर-प्राप्ततया किस द्रव्यमें कौन गुण रहते हैं यह बताते हैं। पृथिवी में रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, संख्या, परिणाम, पृथक्त्व, संयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व, गुरुत्व, द्रवत्व, संस्कार। ऊपर कहे गये गुणों में गन्ध की जगह स्नेह रख दीजिये यह चौदह गुण जलमें रहते हैं।

तेजमें ग्यारह गुण हैं—रूप, स्पर्श, संख्या, परिणाम, पृथक्त्व, संयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व, द्रवत्व और संस्कार।

वायुमें नव गुण हैं—स्पर्श, सङ्ख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व और संस्कार।

आकाशमें ६ गुण हैं—शब्द, सङ्ख्या, परिणाम, पृथक्त्व, संयोग और विभाग।

काल और दिशामें पांच-पांच गुण होते हैं—सङ्ख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग और विभाग।

आत्मामें चौदह गुण हैं—सङ्ख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग, बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, धर्म, अधर्म और संस्कार।

मनमें आठ गुण हैं—संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व और संस्कार।

परमात्मामें भी आठ गुण हैं—संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग, ज्ञान, इच्छा और कृति।

इसी समस्त गुण विभागका संक्षेपमें संग्रह करनेके लिए एक प्राचीन श्लोक उद्धृत करते हैं—वायोर्नवेति० वायुमें नव, तेजमें ग्यारह, जल, पृथिवी तथा आत्मामें चौदह, दिशा तथा कालमें पांच-पांच, आकाशमें छः, परमात्मामें आठ और मनमें भी आठ गुण हैं।

विशेष—गुणका लक्षण है-'द्रव्यकर्मभिन्नत्वे सति सामान्यवत्त्वम्'। इस लक्षणमें समवायेन सामान्यवत्त्व विवक्षित है। अतः कालिकादि सम्बन्धसे सामान्यवान् ध्वंसादिमें अतिव्याप्ति नहीं होती है। लाघवकी दृष्टिसे 'गुणत्वजातियोगित्वम्' यह भी लक्षण कह सकते हैं। गुणपदशक्यतावच्छेदकतया 'गुणत्व'जाति सिद्ध होती है, यह कह आये हैं। गुणोंकी संख्या चौबीस है। यद्यपि लघुत्व, मृदुत्व, कठिनत्व आदिको भी गुण कहते हैं, इस तरह यह संख्या निर्देश अशुद्ध हो जाता है तथापि लघुत्वको गुरुत्वाभावस्वरूप और मृदुत्व तथा कठिनत्वको अवयवसंयोग विशेषरूप मानते हैं, अतः संख्या निर्देशमें कोई दोष नहीं है।

तत्र पृथिवीजलतेजोवायवो द्विविधाः, परमाणवः सावयवाश्च। आकाशकालात्मदिशो विभुरूपाः। मनः परमाणुरूपम्। तत्र सावयवा अनित्याः, इतराणि नित्यानि। सावयवा अपि त्रिविधाः-शरीरेन्द्रिय-

विषयभेदात्। मानुषं शरीरं पार्थिवम्, जलीयं शरीरं वरुणलोके। प्रसिद्धम्, तैजसं शरीरमादित्यलोके, वायवीयं शरीरं वायुलोके।

अनुवाद—उक्त नव प्रकार द्रव्योंमें पृथिवी, जल, तेज और वायु दो प्रकारके हैं० परमाणुरूप और सावयव। आकाश, काल, आत्मा और दिशा ये विभुरूप हैं। मन परमाणुरूप होता है। इनमें जो सावयव हैं वह अनित्य और शेष अर्थात् परमाणुरूप या विभुरूपको नित्य माना गया है। सावयव द्रव्योंके भी शरीर, इन्द्रिय तथा विषय इस भेदसे तीन प्रकार होते हैं। मानुष शरीर पार्थिव है, जलीय शरीर वरुणलोकमें प्रसिद्ध है, तैजस शरीर आदित्यलोकमें और वायवीय शरीर वायुलोकमें होता है।

विशेष—पृथिवीका सामान्य लक्षण है 'गन्धवत्त्व'। इस लक्षणमें सुरभि, असुरभि द्रव्यारब्ध समुदायमें अतिव्याप्ति होगी क्योंकि वहाँ परस्पर विरोध होनेसे गन्धकी उत्पत्ति नहीं मानी जाती है। अवयव गन्धके भानकी सम्भावनासे चित्रगन्ध भी नहीं मान सकते हैं। उत्पन्न विनष्ट घटादिमें अव्याप्ति भी होगी क्योंकि 'उत्पन्नं द्रव्यं क्षणमगुणं निष्क्रियं च तिष्ठति' यह नियम है, अतः गन्धसमानाधिकरणद्रव्यत्वव्याप्यजातिमत्त्व यह लक्षण करना चाहिये। जलमें जो गन्धकी प्रतीति होती है वह पृथिवीकी ही गन्ध है। काल सर्वाधार होता है अतः सभी लक्षण कालमें अतिप्रसक्त हो जायेंगे यह शङ्का नहीं करनी चाहिये, क्योंकि सर्वाधारताप्रयोजक-सम्बन्धातिरिक्त सम्बन्धसे ही लक्षण अभिमत हैं। गन्धसमवायिकारणतावच्छेदकतया पृथिवीत्व जातिकी सिद्धि होती है।

जलका लक्षण है 'शीतस्पर्शसमानाधिकरणद्रव्यत्वव्याप्यजातिमत्त्वम्'। 'शिलातलं शीतलम्' इत्यादि प्रतीतियोंका निर्वाह शिलातलमें जलसम्बन्ध मानकर ही किया जाता है। शीतस्पर्शजनकतावच्छेदकतया जलत्वजातिकी सिद्धि होती है।

तेजका लक्षण है 'उष्णस्पर्शसमानाधिकरणद्रव्यत्वव्याप्यजातिमत्त्व'। 'उष्णं पयः' इत्यादि प्रतीतियोंका निर्वाह जलमें तेजःसम्बन्ध मानकर ही किया जायगा। उष्णस्पर्शजनकतावच्छेदकतया तेजस्त्वजातिकी सिद्धि मानते हैं।

वायु का लक्षण है 'रूपरहितत्वविशिष्टस्पर्शवत्त्व' केवल रूपरहितत्व कहनेसे आकाशादिमें अतिव्याप्ति और केवल 'स्पर्शवत्त्व' कहने से पृथिव्यादिमें अतिव्याप्ति होगी, अतः दोनों अंश अपेक्षित हैं। वायुमें क्या प्रमाण है? इस प्रश्नका उत्तर यह है कि वायुके बहते रहने पर जो अनुष्णाशीतस्पर्श भासित होता है वह तो कहीं आश्रित मानना ही होगा, क्योंकि वह गुण है। उसका आश्रय पृथिवी नहीं है, क्योंकि उद्भूतस्पर्शवान् पृथिवीतत्त्व नियमेन उद्भूतरूपवान् होगा। जल और तेज भी उसके आश्रय नहीं हैं क्योंकि इनमें क्रमशः शीत और उष्ण ही स्पर्श होते हैं। आकाश, काल, दिशा और आत्मा यह विभुचतुष्टय उसके आश्रय नहीं माने जा सकते हैं, क्योंकि वैसा माननेपर उसकी सर्वत्र उपलब्धि होने लग जायगी। मन भी उसका आश्रय नहीं है, क्योंकि परमाणुस्पर्श अतीन्द्रिय होता है,

और यह प्रत्यक्ष है, अतः जो प्रतीयमान स्पर्शाश्रय है वह वायु ही है। वायु प्रत्यक्ष नहीं है वह अनुष्णाशीतस्पर्शानुमेय ही है।

आकाश का लक्षण है 'शब्दगुणकमाकाशम्'। इस लक्षण में गुणपदोपादानसे द्योतित किया जाता है कि आकाशमें शब्द ही विशेष गुण है। आकाश एक होकर भी सर्वत्र उपलब्ध होने से विभु माना जाता है। विभुत्व—सर्वमूर्त्तसंयोगित्व स्वरूप है। मूर्त्तत्व हुआ परिच्छिन्नपरिमाणत्व। लाघवार्थ-'क्रियावत्त्व' ही मूर्त्तत्व माना जा सकता है।

काल का लक्षण है—'अतीतादिव्यवहारहेतुः कालः'। इस लक्षण में आदि पदसे अनागत तथा वर्त्तमानका ग्रहण है। अतीतत्वम्-वर्त्तमानध्वंसप्रतियोगित्वम्। वर्त्तमानत्वम्-इह शब्दाधिकरणकालवृत्तित्वम् भविष्यत्वम्—वर्त्तमानप्रागभावप्रतियोगित्वम्।

आत्मा का लक्षण है—'समवायेन ज्ञानवानात्मा' अथवा 'आत्मत्वसामान्यवानात्मा'।

मनका लक्षण है—'सुखाद्युपलब्धिसाधनत्वे सतीन्द्रियत्वम्'। लाघवार्थ-'स्पर्शरहितत्वे सति क्रियावत्त्वम्' यह भी लक्षण किया जा सकता है। मन अनन्त इस लिए माना जाता है कि प्रत्येक आत्माके लिए अलग अलग मन चाहिए। यदि एक ही मन होगा तो एक क्षणमें अनेक आत्माओंको ज्ञानोदय नहीं हो सकेगा।

दिशाका लक्षण है—'प्राच्यादिव्यवहारहेतुत्वम्'। यह एक तथा नित्य है। दैशिकपरत्वापरत्वसाधारणकारणतया दिशाकी सिद्धि होती है। इन्द्रादिसम्बन्धोपाधिवशात् दश दिशायें मानी जा सकती हैं। उदयाचलसन्निहितमूर्त्तावच्छिन्ना दिक् प्राची' 'तद्व्यवहितमूर्त्तावच्छिन्ना च दिक् प्रतीची'। 'मेरुसन्निहितमूर्त्तावच्छिन्ना दिगुदीची' तद्व्यवहितमूर्त्तावच्छिन्ना तु दिग् दक्षिणा'।

मनः परिमाणके विषयमें जगदीश भट्टाचार्यने लिखा है कि 'मनः परमाणुरूपम्'। मध्यपरिमाण माननेसे अनित्य हो जायगा, अतः मन परमाणुरूप है। दीपिकाकारने इस प्रसङ्गमें कहा है—'मध्यपरिमाणत्वेऽनित्यत्वप्रसङ्गान्मनः परमाणुरूपम्। ननु मनो विभु, स्पर्शरहितद्रव्यत्वात्—आकाशादिवत् इति चेन्न, मनसो विभुत्वे आत्ममनःसंयोगस्यासमवायिकारणस्याभावाज्ज्ञानानुत्पत्तिप्रसङ्गात्। न च विभुद्वयसंयोगोऽस्तीति वाच्यम्, तत्संयोगस्य नित्यत्वेन सुषुप्त्यभावप्रसङ्गात्, पुरीतद्व्यतिरिक्तात्ममनःसंयोगस्य सर्वदा विद्यमानत्वात्। अणुत्वे तु यदा मनः पुरीतति नाड्यां प्रविशति तदा सुषुप्तिः, यदा निःसरति तदा ज्ञानोत्पत्तिरित्यगुत्वसिद्धिः'। पृथिवी, जल, तेज और वायु दो प्रकार के कहे गये हैं—१ सावयव और २ परमाणुरूप। इसमें सावयव अनित्य और परमाणुरूप नित्य होते हैं। सावयव पृथिव्यादिके तीन भेद हैं शरीर, इन्द्रिय और विषय। इनका खुलासा निम्न प्रकार से होता है-

१. पार्थिव शरीर—मानुष शरीर	४. जलीय शरीर वरुणलोकमें प्रसिद्ध शरीर
२. ,, इन्द्रिय—घ्राणेन्द्रिय	५. ,, इन्द्रिय—रसनेन्द्रिय
३. ,, विषय—मृत्पाषाणादि	६. ,, विषय—सरित्समुद्रादि

७. तैजस शरीर–आदित्यलोकमें प्रसिद्ध शरीर १०, वायवीय शरीर–वायुलोकमें प्रसिद्ध शरीर-
८. ,, इन्द्रिय—चक्षुरिन्द्रिय ११. ,, इन्द्रिय—त्वगिन्द्रिय
९. ,, विषय–भौम,दिव्य,उदर्य,आकरजतेज १२. ,, विषय—वृक्षादिकम्पनहेतु वायु

शरीर इन्द्रिय तथा विषयका लक्षण क्या है इस प्रसङ्ग में यह जानना चाहिये—'आत्मनो भोगायतनं शरीरम्'। 'यदवच्छिन्ने आत्मनि भोगो जायते तद्भोगायतनम्'। इस लक्षणकी पादादिमें अतिव्याप्ति होगी अतः अन्त्यावयवित्वे सति यह विशेषण जोड़ दें। अन्तमें—'अन्त्यावयवित्वे सति सुखदुःखान्यतरसाक्षात्कारावच्छेदकं तत्' यह फलित लक्षण हुआ। इन्द्रियका लक्षण हुआ—'शब्देतरोद्भूतविशेषगुणानाश्रयत्वे सति ज्ञानकारणमनःसंयोगाश्रयत्वम्'। विषयका लक्षण है—'शरीरेन्द्रियभिन्नो विषयः'।

घ्राणेन्द्रियं पार्थिवम्, रसनेन्द्रियं जलीयम्, चक्षुरिन्द्रियं तैजसम्, त्वगिन्द्रियं वायवीयम्, श्रोत्रेन्द्रियं कर्णशष्कुल्यवच्छिन्ननभःप्रदेशः, एतानि पञ्च बहिरिन्द्रियाणि। मनोऽन्तरिन्द्रियम्, तेन षडिन्द्रियाणि। विषयाश्च शब्दादिरूपेण प्रसिद्धाः।

व्याख्या—पृथिवीविशेषगुणगन्धग्राहकत्वेन घ्राणस्य पार्थिवेन्द्रियत्वं बोध्यम्, एवमग्रेऽपि, कर्णशष्कुली–श्रोत्रविवरम्। इन्द्रियपदमत्र ज्ञानसाधनत्ववाचि। आन्तरसुखदुःखादिग्राहितया मनोऽन्तरिन्द्रियम्। बाह्यपदार्थग्राहिणां च बहिरिन्द्रियत्वं न्यायप्राप्तमेव। विषयाः तत्तदिन्द्रियगोचरत्वयोग्याः पदार्थाः।

विशेष—घ्राणेन्द्रिय के पार्थिव होने में—'घ्राणेन्द्रियं पार्थिवं रूपादिषु मध्ये गन्धस्यैवाभिव्यञ्जकत्वात्, कुङ्कुमगन्धाभिव्यञ्जकघृतवत्' यह अनुमान ही प्रमाण है। एवं रसनेन्द्रियके जलीय होनेमें—'रसनेन्द्रियं जलीयं गन्धाद्यव्यञ्जकत्वे सति रसव्यञ्जकत्वात्, सक्तुरसाभिव्यञ्जकोदकवत्' यह अनुमान प्रमाण है। इसी तरह—'चक्षुस्तैजसम्, परकीयस्पर्शाद्यव्यञ्जकत्वे सति परकीयरूपव्यञ्जकत्वात्, प्रदीपवत्'। 'त्वगिन्द्रियं वायवीयं रूपादिषु मध्ये स्पर्शस्यैवाभिव्यञ्जकत्वात् अङ्गसङ्गिसलिलशैत्याभिव्यञ्जकव्यजनपवनवत्'। यह जानना चाहिये। श्रोत्रेन्द्रिय तो आकाश ही है। आकाशको लाघवात् एक मानते हैं। श्रोत्र तो पुरुषभेदसे भिन्न भिन्न होगा फिर श्रोत्र आकाशरूप कैसे होगा? इस प्रश्नका उत्तर यह है कि आकाशरूप श्रोत्रेन्द्रिय तो एक ही है केवल कर्णशष्कुलीरूप प्रतिपुरुष भिन्न उपाधिके भेदसे श्रोत्रेन्द्रिय भी भिन्न भिन्न होते हैं।

आत्मा द्विविधः—जीवात्मा परमात्मा च। तत्र जीवात्मानः प्रतिशरीरं भिन्नाः, बन्धमोक्षयोग्याः परमात्मा ईश्वरः।

व्याख्या—'आत्मत्वसामान्यवान्, ज्ञानाश्रयो वा' आत्मा। ज्ञानाश्रयपदमत्र

समवायेन ज्ञानवत्तापरम्। आत्मत्वं जातिस्तत्सिद्धिश्च सुखदुःखादिसमवायिकारणतावच्छेदकतया भवति। ईश्वरे आत्मत्वजातिसत्त्वेऽपि अदृष्टादिकारणविरहान्न सुखाद्युत्पत्तिः। आत्मनि प्रमाणं किमिति चेत्—कर्त्रधिष्ठितानामेव करणानां कार्यकारितायाः सम्मतत्वेन इन्द्रियाणां करणानामधिष्ठातृरूपेणात्मा स्वीकर्त्तव्य इति गृहाण। सुखादिकं जीवलिङ्गम्।

विशेष—'मनुष्योऽहम्' 'ब्राह्मणोऽहम्' इत्यादि प्रतीतियोंमें शरीर ही अहं प्रत्ययविषय होता है अतः शरीरको ही आत्मा कहना चाहिये किसी तदतिरिक्त तत्त्वान्तरको नहीं, इस शङ्का का उत्तर यह है कि ऐसा होनेपर कर-पादादि नाशद्वारा शरीरनाश होनेसे आत्माका भी नाश मानना पड़ जायगा। इन्द्रियोंको भी आत्मा नहीं मान सकते क्योंकि वैसा करनेपर 'योऽहं पूर्वं घटमद्राक्षं सोऽहमिदानीं स्पृशामि' यह अनुसन्धान नहीं होगा, क्योंकि अन्यानुभूतवस्तुका अन्यानुसन्धान विषयत्व नहीं होता है। जीवको सुखादि-वैचित्र्यसे प्रतिशरीर भिन्न मानते हैं। जीव परमाणुपरिमाण नहीं माना जा सकता, क्योंकि वैसा माननेसे अनित्यत्व हो जायगा और अनित्य होनेसे कृतहान तथा अकृताभ्यागम रूप दोष होने लगेंगे। कृतहानका तात्पर्य यह है कि यदि जीव अनित्य होगा तब उसने इस जन्ममें जन्मान्तरलभ्य फल जितने यागादि किये सब व्यर्थ हो जायेंगे क्योंकि उसे तो उसका फल होगा नहीं। 'अकृताभ्यागम' का यह तात्पर्य है कि जिस जीवने यागादि किये वह समाप्त हो गया उसके द्वारा किये गये यागादिका फल अब किसी और जीवको मिलेगा जिसने कुछ भी नहीं किया था। इन्हीं दोषोंसे बचनेके लिये जीवको नित्य मानते हैं।

परमात्मा ही ईश्वर है। 'नित्यज्ञानाधिकरणत्वम्' यही ईश्वर का लक्षण है। ईश्वरकी सत्तामें क्या प्रमाण है? बाह्य प्रत्यक्ष इसलिये नहीं होगा कि वह अरूपि द्रव्य है और आन्तर प्रत्यक्ष भी इसलिए नहीं होगा कि वह आत्मसुखादि-व्यतिरिक्त है, अतः अनुमान तथा तदुपबृंहित आगम ईश्वर में प्रमाण हैं। 'क्षित्यङ्कुरादिकं कर्त्तृजन्यं कार्यत्वात्, घटवत्, न च तत्कर्त्तृत्वमस्मदादीनां सम्भवतीत्यतस्तत्कर्त्तृत्वेनेश्वरसिद्धिः'। यह है मुक्तावली कथित अनुमान। आगम है—'द्यावाभूमी जनयन् देव एको विश्वस्य कर्त्ता भुवनस्य गोप्ता'।

अथ प्रत्यक्षाप्रत्यक्षद्रव्याणि—परमाणुद्व्यणुके अप्रत्यक्षे। महदुद्भूतरूपत्वं यत्र तानि पृथिवीजलतेजांसि प्रत्यक्षाणि। आत्मा च प्रत्यक्षः। वाय्वाकाशकालदिङ्मनांसि त्वप्रत्यक्षाणि। बहिर्द्रव्यप्रत्यक्षं प्रति महत्त्वे सत्युद्भूतरूपत्वं प्रयोजकम्।

व्याख्या—अतः परं कानि द्रव्याणि प्रत्यक्षाणि इन्द्रियगोचरतायोग्यानि कानि

चाप्रत्यक्षाणि अतथाभूतानि तदाह—परमाणुद्व्यणुके इति०। प्रत्यक्षमत्रेन्द्रियार्थसन्निकर्षजन्यं ज्ञानमेव विवक्षितं बोध्यम्। 'महद्दुद्भूतरूपत्व'मित्यत्र भावप्रत्ययस्योभयत्रान्वयस्तेन महत्त्वमुद्भूतरूपत्वं च यत्र तत्प्रत्यक्षमिति सिद्धम्। आत्मा च प्रत्यक्ष इत्यत्रान्तरप्रत्यक्षविषय इति बोध्यम्।

अनुवाद--परमाणु तथा द्वयणुक अप्रत्यक्ष होते हैं क्योंकि उनमें महत्त्व तथा उद्भूतरूपत्व नहीं माना जाता है, महत्त्व उसके बाद त्रसरेणुसे होता है, उद्भूतरूपता भी परमाणु तथा द्वयणुकमें नहीं ही होती है। महत तथा उद्भूतरूपवाले पृथिवी, जल, तेजका प्रत्यक्ष होता है। आत्माका भी मानसप्रत्यक्ष होता है। महत्त्व तथा उद्भूतरूपत्व बाह्य प्रत्यक्षके ही कारण हैं आन्तर प्रत्यक्षके नहीं।

अथ द्रव्योत्पत्तिप्रक्रिया, तत्रोत्पत्तिः कारणवतः, अनन्यथासिद्धनियतपूर्ववर्त्तिकारणम्, तत्त्वं कारणत्वम्। त्रिविधानि कारणानि-समवायिकारणासमवायिकारणनिमित्तकारणानि। यत्समवेतं कार्यमुत्पद्यते तत् समवायिकारणम्, यथा परमाणुर्द्व्यणुकस्य कपालं घटस्य।

व्याख्या—कारणलक्षणनिर्वचनार्थमुत्पत्तिप्रक्रियामाह—अथेति०। अनन्यथासिद्धम् अन्यथासिद्धभिन्नम्। अवश्यकल्पनियतपूर्ववर्त्तिन एव कार्यसम्भवे तद्भिन्नमन्यथासिद्धमिति तत्परिभाषा। यथा घटं प्रतिदण्डकुलालादि यत्कारणमवश्यकल्पं तदतिरिक्तं दण्डत्वदण्डरूपव्योमकुलालजनकरासभादिकमन्यथासिद्धम्। यत्समवेतमिति०। यद्धर्मावच्छिन्नं यद्धर्मावच्छिन्ने समवायेनोत्पद्यते, तद्धर्मावच्छिन्नं प्रति तद्धर्मावच्छिन्नं समवायिकारणम्। उदाहरणमाह—परमाणुरिति०।

अनुवाद—अनन्तर द्रव्योत्पत्तिप्रक्रिया बतावेंगे। कारणवान्की ही उत्पत्ति होती है। अन्यथासिद्धसे भिन्न तथा कार्थनियतपूर्ववृत्तिको कारण माना जाता है। कारण तीन प्रकारके होते हैं, समवायिकारण, असमवायिकारण और निमित्तकारण। जिसमें समवाय सम्बन्धसे वृत्ति होकर कार्य हो वह समवायिकारण कहलाता है, जैसे द्वयणुकके प्रति परमाणु और घटके प्रति कपाल।

विशेष—उत्पत्ति प्रक्रियाके विषयमें अन्यत्र ऐसे लिखा है—'ईश्वरस्य चिकीर्षावशात परमाणुषु क्रिया जायते, ततः परमाणुद्वयसंयोगे द्व्यणुकमुत्पद्यते, त्रिभिर्द्व्यणुकैस्त्र्यणुकम्। एवं चतुरणुकादिक्रमेण महापृथिवीप्रभृति कार्यजातम्'।

समवायिकारणे सम्बद्धं कारणमसमवायिकारणम्। यथा परमाणुद्वयसंयोगो द्व्यणुकस्य, कपालरूपं घटरूपस्य। एतदुभयभिन्नं यत्का-

रणं तन्निमित्तकारणम् , यथा द्व्यणुके ईश्वरः, घटे दण्डः। एतत्कारणत्रयं भावकार्यमात्रस्य।

व्याख्या—'समवायस्वसमवायिसमवेतत्वान्यतरसम्बन्धेन कारणत्वे सत्यात्मविशेषगुणान्यत्वमसमवायिकारणत्वम्' इति दिनकरी। कार्येण कारणेन वा सहैकस्मिन्नर्थे समवेतत्वे सति यत्कारणं तदसमवायिकारणमिति तर्कसंग्रहः। उदाहरति-परमाणुद्वयेति०। कार्येण द्व्यणुकेन सह एकस्मिन् परमाणौ समवेतत्वात्परमाणुद्वयसंयोगो द्व्यणुकेऽसमवायिकारणमिति समन्वयः। कारणेन चेति कोट्यन्तरमुदाहरति-कपालरूपमिति०। कारणेन घटेन सह एकस्मिन् कपाले समवेतत्वात् कपालरूपं घटरूपस्य तथेत्यर्थः। समवायिकारणासमवायिकारणभिन्नं कारणं निमित्तकारणम्। तत्र दृष्टान्तः-यथा द्व्यणुक इति। एतत् कारणत्रयम्—समवायिकारणासमवायिकारणनिमित्तकारणरूपं कारणत्रितयम्। भावकार्यमात्रस्य—कार्यं द्विविधं भावरूपमभावरूपञ्च, तत्र भावकार्यमात्रं कारणत्रयमिदमपेक्षत इत्याशयः।

अनुवाद—समवायिकारणमें कार्य अथवा कारणके साथ रहकर जो कारण हो वह असमवायिकारण होता है। जैसे परमाणुद्वयसंयोग द्व्यणुकके प्रति असमवायिकारण है, और कपालरूप घटरूपके प्रति असमवायिकारण है। इन तीनों—समवायिकारण और असमवायिकारणसे भिन्न कारण निमित्तकारण कहे जाते हैं, इनको साधारण कारण भी कहते हैं। जैसे द्व्यणुकके प्रति ईश्वर और घटके प्रति दण्ड। द्व्यणुकका समवायिकारण हुआ परमाणुद्वय और असमवायिकारण हुआ परमाणुद्वय संयोग, तदतिरिक्त ईश्वर निमित्त कारण हुआ। घटका समवायिकारण कपालद्वय और असमवायिकारण हुआ कपालद्वयसंयोग, तदुभयभिन्न दण्ड हुआ निमित्त कारण।

तत्र समवायिकारणं द्रव्यमेव। असमवायिकारणं द्रव्ये गुणः, गुणे गुणः कर्म च। कार्यमात्रं प्रति साधारणकारणानि-ईश्वरः, तज्ज्ञानेच्छाकृतयः, प्रागभावकालदिगदृष्टानि। तत्र परमाणुद्वयसंयोगाद्द्व्यणुकमुत्पद्यते, संयुक्तद्व्यणुकात्त्रसरेणुः। एवं चतुरणुकादिकपालान्तम्। कपालद्वयसंयोगेन घटो जन्यते, घटस्त्वन्त्यावयवी।

व्याख्या—समवायिकारणं द्रव्यमेव भवति न गुणकर्मणी तदुक्तं विश्वनाथेन-'समवायिकारणत्वं द्रव्यस्यैवेति विज्ञेयम्' इति। गुणः कर्म चासमवायिकारणम्, तत्र द्रव्ये गुणोऽसमवायिकारणं गुणे कार्ये गुणः कर्म च तथेति बोध्यम् , यथोक्तं विश्वनाथेन-'गुणकर्ममात्रवृत्ति ज्ञेयमथाप्यसमवायिहेतुत्वम्।' द्रव्ये गुणः अवयवसंयोगादिरसम-

वायिकारणं गुणे कार्यस्य गुणे रूपादौ गुणस्तत्समवायिकारणरूपादिस्तथेति विवेकः। कर्म पुनः संयोगविभागयोरसमवायिकारणम्। कार्यमात्रं प्रति—कार्यत्वावच्छिन्नं प्रति।

अनुवाद—समवायिकारण केवल द्रव्य ही होता है, द्रव्यके प्रति गुण असमवायिकारण होते हैं, गुणके प्रति गुण और कर्म दोनों असमवायिकारण होते हैं। कार्यमात्रके प्रति साधारण कारण होते हैं—ईश्वर, उनका ज्ञान, इच्छा और प्रयत्न, एवम्—प्रागभाव, काल, दिशा और अदृष्ट। परमाणुद्वयके संयोगसे द्वयणुककी उत्पत्ति होती है, संयुक्तद्वयणुकसे त्रसरेणुकी। इसी तरह त्रसरेणुओंके संयोगसे चतुरणुकादिकपालान्त द्रव्यकी उत्पत्ति होती है। कपालद्वयसंयोगसे घट उत्पन्न होता है। वह अन्त्यावयवी है अर्थात् उससे किसीकी उत्पत्ति नहीं होती, वह अनारम्भक है।

अत्र द्रव्ये प्रमाणं कथ्यते—प्रत्यक्षद्रव्ये प्रत्यक्षमेव प्रमाणम्, अतीन्द्रियेऽनुमानम्। तत् पक्षहेतुसाध्यदृष्टान्तज्ञानसाध्यम्। विशेषो वक्ष्यते। परमाणुद्वयणुकानुमानं यथा,—त्रसरेणुः सावयवद्रव्यारब्धः बहिरिन्द्रियवेद्यद्रव्यत्वात्। बहिरिन्द्रियवेद्यद्रव्यं यत् तत्सावयवद्रव्यारब्धं, यथा घटः। अत्र त्रसरेणुः पक्षः, सावयवद्रव्यारब्धत्वं साध्यम्, बहिरिन्द्रियवेद्यद्रव्यत्वादिति हेतुः, घटो दृष्टान्तः। अनेन द्वयणुकं परमाणुश्च सिद्ध्यति।

व्याख्या—प्रत्यक्षद्रव्ये—इन्द्रियवेद्यत्वयोग्ये द्रव्ये। अतीन्द्रिये = इन्द्रियाण्यतिक्रान्ते तैर्ग्रहीतुमशक्ये। तद् अनुमानम्। पक्षः—सन्दिग्धसाध्यवान् पक्षः। साध्यव्यापको हेतुः। यस्य ज्ञानमनुमानेन चिकीर्षितं तत्साध्यम्। दृष्टान्तः-निश्चितसाध्यवान्। यथा—पर्वतो वह्निमान् धूमात् यथा महानसम्। अत्र पर्वतः पक्षः, यतस्तत्र धूमदर्शनेन वह्निसंशयः। साध्यो वह्निर्यतोऽसावनुमित्सितः। हेतुर्धूमः, यतोऽसौ वह्निव्यापकः। दृष्टान्तः—महानसं यतोऽदः निश्चितसाध्यवत्। वक्ष्यते—अनुमानप्रकरण इति शेषः। अतीन्द्रियानुमानमुदाहरति—त्रसरेणुरिति०।

अनुमान—द्रव्यमें प्रमाण कहे जाते हैं। प्रत्यक्ष द्रव्यमें प्रत्यक्ष और अतीन्द्रिय द्रव्यमें अनुमान प्रमाण हैं। अनुमानमें पक्ष, हेतु, साध्य और दृष्टान्त इन चार चीजोंका ज्ञान आवश्यक होता है। इसका विशेष विवेचन अनुमान-निरूपण प्रसङ्गमें किया जायगा। परमाणु और द्वयणुकका अनुमान इस प्रकार होता है—त्रसरेणु सावयवद्रव्योंसे बने हैं क्योंकि वह बहिरिन्द्रियवेद्य द्रव्य हैं। जो बहिरिन्द्रियवेद्य होते हैं वह सभी सावयवद्रव्यारब्ध होते हैं, जैसे घट। इस अनुमानमें त्रसरेणु पक्ष, सावयवद्रव्यारब्धत्व साध्य, बहिरिन्द्रियवेद्यद्रव्यत्व हेतु और घट दृष्टान्त हैं। इससे परमाणु तथा द्वयणुककी सिद्धि हुई।

आकाशवायू शब्देन स्पर्शेन चानुमीयेते, शब्दो द्रव्याश्रितः, गुणत्वात्, यथा घटरूपम्, अनेन द्रव्यान्तरबाधात् शब्दाश्रयत्वेनाकाशं सिद्ध्यति। पृथिव्यादित्रयावृत्तिरयं स्पर्शो द्रव्याश्रितः, गुणत्वात्, इत्यनुमानेन द्रव्यान्तरबाधात् स्पर्शाश्रयत्वेन वायुः सिद्ध्यति।

व्याख्या—आकाशस्य शब्देनानुमानं भवति, वायोश्च स्पर्शेनानुमानं भवति। तत्र शब्देनाकाशानुमानं यथा—शब्दो द्रव्याश्रित इति० द्रव्यान्तरबाधात्—पृथिव्यादीनां द्रव्याणां शब्दाश्रयत्वासम्भवात् परिशेषादाकाशं सिद्ध्यतीत्यर्थः। अयं स्पर्शः—अनुष्णाशीतस्पर्शः। वायोः स्पार्शनप्रत्यक्षविषयत्वन्तु नापाद्यम्, बहिरिन्द्रियजन्यद्रव्यप्रत्यक्षे रूपस्य कारणत्वात्।

अनुवाद—आकाश और वायुका क्रमशः शब्द तथा स्पर्शसे अनुमान किया जाता है। जैसे—शब्द द्रव्याश्रित है क्योंकि वह गुण है जैसे घटका रूप। इस अनुमान द्वारा परिशेषात् शब्दाश्रय आकाशकी सिद्धि होती है। पृथिव्यादित्रयमें अवृत्ति यह अनुष्णाशीतस्पर्श द्रव्याश्रित है क्योंकि वह गुण है। इस अनुमानसे परिशेषात् वायुकी सिद्धि होती है।

काले प्रमाणं यथा—परत्वापरत्वे द्विविधे, कालिके दैशिके च। परत्वोत्पत्तिश्च बहुतररविक्रियाविशिष्टशरीरज्ञानात्, अपरत्वोत्पत्तिश्च स्वल्पतररविक्रियाविशिष्टशरीरज्ञानात्। तत् परत्वं ज्येष्ठत्वम्, अपरत्वं कनिष्ठत्वम्। तदनुमानं यथा—परत्वजनकं बहुतररविक्रियाविशिष्टशरीरज्ञानमिदं परम्परासम्बन्धघटकसापेक्षं, साक्षात्सम्बन्धाभावे सति विशिष्टज्ञानत्वात्, लोहितः स्फटिक इति प्रत्ययवत्। परम्परासम्बन्धश्च स्वसमवायिसंयुक्तसंयोगः। तेन सम्बन्धघटकः कालः सिद्ध्यति।

व्याख्या—काले प्रमाणं निरूपयितुं प्रक्रमते—काल इति० परव्यवहारकारणं परत्वम्, अपरव्यवहारकारणमपरत्वम्। कालिकं कालकृतम्, दैशिकं दिक्कृतम्। ज्येष्ठे कालकृतं परत्वं कनिष्ठे कालकृतमपरत्वम्। दूरस्थे दिक्कृतं परत्वं समीपस्थे कालकृतमपरत्वम्। परत्वमत्र कालकृतमेव ग्रहीतुमिष्टं काले प्रमाणस्य वक्तव्यत्वात्तदाशयेनाह—परत्वोत्पत्तिश्चेति० कालिकपरत्वोत्पत्तिरित्यर्थः। बहुतररविक्रियाविशिष्टशरीरज्ञानात्—रविक्रियादिनपक्षमासर्त्तुप्रवृत्तिरूपा तद्विशिष्टस्तद्भोगी। तज्ज्ञानञ्चावयवोपचयविशरणादिसाध्यमिति बोध्यम्। स्वसमवायिसंयुक्तसंयोग इत्यत्र स्वं रवि-

क्रिया तत्समवायी रविः तत्संयुक्तः कालः तत्संयोगः शरीरेणेति—सम्बन्धघटकस्य कालस्य सिद्धिर्भवति ।

अनुवाद—कालमें प्रमाण बतानेका उपक्रम करते हैं। परत्व तथा अपरत्व दो प्रकारके हैं कालिक तथा दैशिक। अधिकतर रविक्रियायुक्त शरीरके ज्ञानसे परत्वकी तथा अल्पतर रविक्रियाविशिष्ट शरीरके ज्ञानसे अपरत्वकी उत्पत्ति होती है। परत्वको ही ज्येष्ठत्व तथा अपरत्वको कनिष्ठत्व कहते हैं। उसके अनुमान का यह प्रकार है—यह परत्वजनक बहुत रविक्रियाविशिष्टशरीर ज्ञानपरम्परासम्बन्धघटक सापेक्ष है क्योंकि साक्षात्सम्बन्ध न होनेपर भी वह विशिष्ट ज्ञान है जैसे 'लोहितः स्फटिकः' यह ज्ञान। अतः सम्बन्धघटक अर्थात् स्वसमवायिसंयुक्तसंयोगरूप परम्परासम्बन्धघटक होनेसे कालकी सिद्धि होती है। 'स्व-रविक्रिया, तत् समवायी रवि, तत्संयुक्त काल, तत्संयोग शरीरको' इस प्रकार सम्बन्धपरम्परामें काल आ जाता है।

विशेष—भास्करोदयामें परत्वापरत्वको अतिरिक्त गुण नहीं माना है, उनका कहना है कि—'परापरव्यवहारप्रकाररूपपरत्वापरत्वेनातिरिक्तगुणत्वावच्छिन्ने, मानाभावात्। दिक्कृतपरापरयोर्बहुतरसंयुक्तसंयोगाल्पतरसंयुक्तसंयोगाभ्यां तथा ज्येष्ठकनिष्ठयोस्तत्प्रागभावाधिकरणक्षणावृत्तिकत्वरूपज्येष्ठत्वतदुत्पत्तिक्षणध्वंसाधिकरणक्षणोत्पत्तिकत्वरूपकनिष्ठत्वाभ्यामेवोभयव्यवहारोपपत्तेः'।

ननु कालस्य भूतभविष्यद्वर्त्तमानभेदेन बहुत्वात् कुत एकत्वमिति चेन्न, उपाधिभेदेन भेदप्रत्ययात्। कालोपाधयो रविक्रियादिरूपा भिन्ना एव।

व्याख्या—कालस्य भूतभविष्यद्वर्त्तमानादिभेदेनानेकतया कथमेकत्वमिति शङ्का। उपाधिभेदेन क्षणदिनमासाद्युपाधिभेदेन भेदावगम इत्युत्तरम्। भूतत्वम्—वर्त्तमानध्वंसप्रतियोगित्वम्। वर्त्तमानत्वम्—इह शब्दाधिकरणकालवृत्तित्वम्। भविष्यत्वम्—वर्त्तमानप्रागभावप्रतियोगित्वम्।

अनुवाद—काल भूतादि भेदसे जब बहुत हैं तब उसे एक प्रकारका क्यों कहा गया है, इस प्रश्नका उत्तर यह है कि कालकी उपाधियां रविक्रियादिरूप भिन्न हैं, अतः काल भी उनके द्वारा भिन्न है [वर्त्तमानध्वंसप्रतियोगिरविक्रियाविशिष्टकाल हुआ भूतकाल। एवम्—वर्त्तमानप्रागभाव प्रतियोगिरविक्रियाविशिष्टकाल होगा भविष्य और इहशब्दप्रयोगाधिकरणकालवृत्तिरविक्रियाविशिष्टकाल होगा वर्त्तमानकाल]

एवं दैशिकपरत्वापरत्वाभ्यां दिशः सिद्धिः; ते च दूरत्वसमीपत्वे। अवधिसापेक्षबहुतरसंयोगविशिष्टशरीरज्ञानमिदं परत्वजनकं परम्परा-

सम्बन्धघटकसापेक्षमित्यादि पूर्ववत्। तेन च दिशः सिद्धिः। न चाकाशमेव सम्बन्धघटकमास्तामिति वाच्यम्, तस्य शब्दाश्रयत्वेनैव धर्मिग्राहकप्रमाणसिद्धत्वात् न रविक्रियाद्युपनायकत्वसम्भवः।

व्याख्या—दैशिकं दिक्कृतं परत्वमपरत्वञ्चादाय दिशः सिद्धिः। ते-दैशिक-परत्वापरत्वे—'अवधिसापेक्षबहुतरसंयोगविशिष्टशरीरज्ञानमिदं परत्वजनकं परम्परासम्बन्धघटकसापेक्षं साक्षात्सम्बन्धाभावे सति विशिष्टज्ञानत्वात्' एवम् 'अवधिसापेक्षाल्पतरसंयोगविशिष्टशरीरज्ञानमिदमपरत्वजनकं परम्परासम्बन्धघटकसापेक्षम्' इत्यूहनीयम्। यथा प्रयागात् काशीतो गया परा, प्रयागाद् गयातः काशी अपरा इति। अत्राद्येऽवधिः काशी, तदपेक्षया प्रयागेऽधिकबहुतरसंयोगवत्त्वं गयायाम्। द्वितीयेऽवधिर्गया, तदपेक्षया प्रयागेऽधिकाल्पतरसंयोगवत्त्वं काश्याम्। अनयोः स्थलयोः स्वसमवायिसंयुक्तत्वरूपा परम्परा, ततस्तत्समवायिदिक्सिद्धिः। ननु परम्परासम्बन्धघटकत्वेन यथा दिक् साध्यते तथाऽऽकाशमेव साध्यतामित्यत्राह—तस्येति। धर्मिग्राहकमाणसिद्धत्वात् आकाशं शब्दाश्रय इत्यनुमानसिद्धत्वात्। रविक्रियाद्युपनायकत्वसम्भवः=रविक्रियोपनीतभानविषयत्वम्।

दीधितौ तु—'दिक्कालौ नेश्वरादतिरिच्येते मानाभावात्, तत्तत्कालोपाधिदिगुपाधिविशिष्टादीश्वरादेव क्षणदिनप्राचीप्रतीचीत्यादिव्यवहारोपपत्तेः' इत्युक्तम्। नव्यास्तु—'ईश्वरस्य दिक्कालरूपत्वं ततज्जीवस्य वेति विनिगमनाविरहेणातिरिक्तयोस्तयोः स्वीकारः' इति वदन्ति।

अनुवाद—इसी तरह दैशिकपरत्वापरत्वसे दिशाकी सिद्धि होती है। दैशिकपरत्व-अपरत्वको ही दूरत्व समीपत्व भी कहते हैं। यहां भी कालकी तरह-अवधिसापेक्ष अधिकसंयोगविशिष्ट शरीरज्ञान परत्वजनक है, क्योंकि वह परम्परासम्बन्धघटक सापेक्ष है, इस तरहके अनुमानसे दिशाकी सिद्धि होती है। यहां शङ्का होती है कि परम्परासम्बन्धघटक आकाशको ही क्यों न माना जाय? इसका उत्तर यह है कि आकाश तो शब्दाश्रयत्वेन सिद्ध है वह रविक्रियाका उपनायक नहीं हो सकता है।

'अहं सुखी'त्यादिप्रत्यक्षमात्मनि प्रमाणम्। ईश्वरे चानुमानं यथा-'क्षितिः सकर्तृका, कार्यत्वात्, घटवत्'। तेनेश्वरस्य तद्वृत्तिनित्यज्ञानेच्छाकृतीनां तत्सार्वज्ञ्यस्य च सिद्धिः।

व्याख्या—'अहं सुखी' इत्याकारमान्तरप्रत्यक्षमात्मनि प्रमाणम्, सुखस्यात्मनि सम्भवात्। ईश्वरे त्वनुमानमेव प्रमाणम्, तदाकारो मूलोक्तो वेद्यः। तेन—

अनुमानेन । अनुमानेनानेन ईश्वरस्य सिद्धिः, जगत्कर्त्ता ईश्वर इति सिद्धे उपादान-गोचरापरोक्षज्ञानचिकीर्षाकृतिमत एव च कर्तृत्वसम्भवेन ईश्वरे ज्ञानस्य इच्छायाः कृतेश्च सिद्धिः, कर्तृत्वेन स्वीकृते तत्र तत्स्वीकारस्यार्थापतितत्वात् । ईश्वरीयं ज्ञानम् तदिच्छा तत्कृतिश्च नित्यत्वेन मन्यन्ते, नित्यगुणानां नित्यत्वाभ्युपगमात् । जगत्कर्तृत्वेनैव चेश्वरस्य सार्वज्ञ्यमप्यायाति, विलक्षणस्य जगतः सर्वज्ञेनैव रचयितुं शक्यत्वात् ।

अनुवाद—'अहं सुखी' इत्याकारक आन्तरप्रत्यक्ष आत्मामें प्रमाण है । ईश्वरमें—'पृथिवी सकर्तृक है क्योंकि वह कार्य है जैसे घट' यह अनुमान प्रमाण है । इसी अनुमान के आधारपर ईश्वरकी नित्यज्ञान, नित्येच्छा, नित्यकृति तथा सर्वज्ञता भी मानी जाती है ।

विशेष—मूलोक्त ईश्वरानुमानमें 'क्षितिः' से द्व्यणुक समझना चाहिये । यदि क्षितिसे यह विशाल पृथिवी ली जायगी तब तो प्रश्न होगा कि आप क्या कहते हैं ? क्षितित्वसामानाधिकरण्येन अनुमान करते हैं कि तदवच्छेदेन ? यदि क्षितित्वसामानाधिकरण्येन सकर्तृकत्व साधन कीजियेगा तब सिद्धसाधन होगा क्योंकि पटादिके विषयमें कुविन्दादिकर्तृकत्व सिद्ध ही है । यदि क्षितित्वावच्छेदेन सकर्तृकत्व साधन कीजियेगा तो बाध होगा क्योंकि परमाण्वादि सकर्तृक नहीं होते हैं । अतः क्षिति-पदको द्व्यणुकका उपलक्षक मानना चाहिये । यहां कार्यत्वसे 'प्रागभावप्रतियोगित्वे सति ध्वंसप्रतियोगित्वम्' एतल्लक्षणलक्षित कार्य लिये जाते हैं अतः ध्वंसमें व्यभिचार नहीं होगा ।

मनसि प्रमाणं यथा—सुखादिप्रत्यक्षमिन्द्रियजन्यम्, जन्यप्रत्यक्षत्वात्, घटप्रत्यक्षवत् । तथा चेन्द्रियान्तरबाधे मनसः सिद्धिः ।

व्याख्या—'सुखादिप्रत्यक्षमिन्द्रियजन्यम्' इत्यनुमानेन सुखादेरिन्द्रियजन्यत्वं साधितं किं तदिन्द्रियं यज्जन्यं सुखादिप्रत्यक्षमिति विचारे बाह्येन्द्रियाणां न तत्र प्रसक्तिस्तेषां विषयाणां व्यवस्थापितत्वादतो मनःसिद्धिः । 'स्पर्शरहितत्वे सति क्रियावत्त्वं' मनसो लक्षणं बोध्यम् ।

अनुवाद—'सुखादि प्रत्यक्ष इन्द्रियजन्य है क्योंकि वह जन्य प्रत्यक्ष है जैसे घट-प्रत्यक्ष' । यही अनुमान मनकी सिद्धि करता है । दूसरे इन्द्रियसे सुखका प्रत्यक्ष नहीं हो सकता है अतः मन मानना होता है ।

अथ द्रव्यनाशप्रक्रिया—द्रव्यनाशो द्विविधः, क्वचिदसमवायिकारणनाशात्, क्वचित् समवायिकारणनाशाच्च । तत्राद्यो यथा परमाणुद्वयसंयोगनाशात् द्व्यणुकनाशः । द्वितीयो यथा कपालनाशाद् घटनाशः, घटनाश उभयतः सम्भवति ।

व्याख्या—प्राक्तनसन्दर्भेणोत्पत्त्यादिप्रक्रियामुक्त्वा सम्प्रति द्रव्यनाशप्रक्रियामाह द्रव्यनाश इति० विनाशिद्रव्यनाश इत्यर्थः। द्विविधः-असमवायिकारणनाशप्रयोज्यः, समवायिकारणनाशप्रयोज्यश्चेति द्विप्रकारक इत्यर्थः। उदाहरति–तत्राद्य इति० द्व्यणुकं प्रति परमाणुद्वयसंयोगेऽसमवायिकारणं तस्य संयोगस्य नाशे द्व्यणुकं नश्यति। द्वितीयः-समवायिकारणनाशान्नाशः। कपालस्य घटं प्रति समवायिकारणत्वेन कपाले नष्टे घटोऽपि नश्यति। इत्थमुदाहृत्य विशेषमाह-घटनाश इति० उभयतः समवायिकारणनाशात् असमवायिकारणनाशाच्चेत्यर्थः। घटस्य स्वसमवायिकारणभूतकपालनाशेन स्वासमवायिकारणभूतकपालद्वयसंयोगनाशेनापि च नाशः सम्भवतीति भावः। ननु नायं विशेषो घट एव किन्तु सर्वत्रैव केवलासमवायिकारणनाशनाश्यद्रव्योदाहरणासम्भव इति चेन्न, द्व्यणुकस्य तथात्वात्। द्व्यणुकं हि स्वासमवायिकारणभूतपरमाणुद्वयसंयोगनाश्यनाश्य एव, तत्समवायिकारणस्य परमाणुद्वयस्य नित्यत्वादिति।

अनुवाद—द्रव्यनाशका प्रकार बताते हैं—द्रव्योंका नाश दो प्रकार से होता है, कहीं असमवायिकारणनाशसे और कहीं समवायिकारणनाशसे। आद्य है-परमाणुद्वयसंयोगनाशसे द्व्यणुकनाश, द्वितीय है कपालनाशसे घटका नाश। घटका नाश दोनों तरहसे होता है।

आकाशकालदिगात्मपरमाणवोऽवृत्तयः; समवायश्च। पृथिव्यादिपञ्चानां भूतत्वम्, पृथिवीजलतेजोवायुमनसां क्रियावत्त्वमूर्त्तत्वे। पृथिव्यतेजोवायवो द्रव्यसमवायिकारणानि। कालस्य कालिकसम्बन्धेन सर्वाधिकरणत्वम्। दिशो दैशिकसम्बन्धेन सर्वाधिकरणत्वम्, इति द्रव्यनिरूपणम्।

व्याख्या—आकाशम्, कालः, दिशः, आत्मा, परमाणुः, समवायश्चैतेऽवृत्तयः समवायेन क्वचिदनाश्रिताः। आकाशाद्याः समवायान्ता अमी समवायेन क्वचिदपि न वर्त्तन्तेऽनवयवत्वादित्यर्थः। पृथिव्यादिपञ्चानाम्–पृथिवीजलतेजोवायवाकाशानाम्। भूतत्वम्–भूतपदास्पदत्वम्, तत्त्वञ्च–बहिरिन्द्रियग्राह्यविशेषगुणवत्त्वम्। विशेषा गुणाः–'रूपं गन्धो रसः स्पर्शः स्नेहः सांसिद्धिको द्रवः। बुद्ध्यादिभावनान्ताश्च शब्दो वैशेषिका गुणाः' इति परिगणिताः। पृथिव्यां बहिरिन्द्रियभूतनाशाग्राह्यगन्धरूपो विशेषगुणः, जले शीतस्पर्शो विशेषगुणो यस्त्वगिन्द्रियरूपबहिरिन्द्रियग्राह्यः। तेजसि रूपं विशेषगुणो यश्चक्षुर्ग्राह्यः। वायावपि स्पर्श एव, शब्दश्चाकाश इति विवेकः। पृथ्वीजलतेजोवायुमनसां क्रियावत्त्वमूर्त्तत्वे, द्रव्येषु शिष्टानामाकाशकालदिगात्मनाम-

क्रियत्वादित्थमुक्तममूर्त्तत्वाच्च। मूर्त्तत्वं च क्रियासमवायिकारणत्वावच्छेदकतया सिद्धो जातिविशेषो मूर्त्तत्वम्। पृथिव्यप्तेजोवायवः समवायिकारणानि-सजातीयावयवारब्ध-पृथिव्यादिचतुष्टयं प्रति तेषां समवायिकारणत्वमभिप्रेत्येत्थमुक्तम्।

अनुवाद—आकाश, काल, दिशा, आत्मा, परमाणु और समवाय यह अवृत्ति अर्थात् समवाय सम्बन्धसे कहीं भी अनाश्रित होते हैं, क्योंकि इनके अवयव नहीं होते हैं। पृथिव्यादि पाँच भूत कहे जाते हैं। पृथिवी, जल, तेज, वायु, मन, क्रियावान् तथा मूर्त्त होते हैं। पृथिवी, जल, तेज और वायु द्रव्यके प्रति समवायिकारण होते हैं। काल कालिक सम्बन्धसे सर्वाधिकरण होता है और दिशा दैशिक सम्बन्धसे सर्वाधार है।

अथ गुणाः कथ्यन्ते—'रूपरसगन्धस्पर्शसङ्ख्यापरिमाणपृथक्त्व-संयोगविभागपरत्वापरत्वबुद्धिसुखदुःखेच्छाद्वेषप्रयत्नगुरुत्वद्रवत्वस्नेह-संस्कारधर्माधर्मशब्दाश्चतुर्विंशतिर्गुणाः'। अत्र रूपत्वादीनि सर्वाण्येव जातयः। रूपं पृथिवीजलतेजोवृत्ति। तच्च शुक्लकृष्णरक्तपीतचित्रादि-भेदेन बहुविधं पृथिवीवृत्ति। अभास्वरशुक्लरूपं जलवृत्ति। शुक्लभास्वरं तेजोवृत्ति। रसः पृथिवीजलवृत्तिः। तत्र मधुरलवणकटुतिक्ताम्लकषाय-भेदात् षड्विधो रसः पृथिव्याम्। जले मधुर एव रसः।

व्याख्या—सपरिकरं द्रव्यं निरूप्य गुणनिरूपणमारभते—अथेति० रूपादीनां लक्षणानि यथाक्रमन्निर्दिश्यन्ते, चक्षुर्मात्रग्राह्यो गुणो रूपम्। रसनाग्राह्यो गुणो रसः। घ्राणग्राह्यो गुणो गन्धः। त्वगिन्द्रियमात्रग्राह्यो गुणः स्पर्शः। एकत्वादिव्यवहारहेतुः सङ्ख्या। मानव्यवहारासाधारणकारणं परिमाणम्। पृथग्व्यवहारासाधारणं कारणं पृथक्त्वम्। संयुक्तव्यवहारहेतुः संयोगः। संयोगनाशको गुणो विभागः। परव्यव-हारासाधारणकारणं परत्वम्। अपरव्यवहारासाधारणकारणमपरत्वम्। सर्वव्यव-हारहेतुर्गुणो बुद्धिर्ज्ञानम्। अनुकूलवेदनीयं सुखम्। प्रतिकूलवेदनीयं दुःखम्। काम इच्छा। क्रोधो द्वेषः। कृतिः प्रयत्नः। आद्यपतनासमवायिकारणं गुरुत्वम्। आद्य-स्पन्दनासमवायिकारणं द्रवत्वम्। चूर्णादिपिण्डीभावहेतुर्गुणः स्नेहः। संस्कारत्व-जातिमान् संस्कारः। विहितकर्मजन्यो धर्मः। निषिद्धकर्मजन्योऽधर्मः। श्रोत्रग्राह्यो गुणः शब्दः। अत्र गुणविभागे रूपत्वादीनि सर्वाणि जातयस्तेषु जातिलक्षणसमन्वयात्। एषां गुणानामाश्रयानाह—रूपमित्यादिना। शुक्लभास्वरं भास्वरशुक्लमित्यनर्थान्तरम्।

अनुवाद—गुणोंका प्रतिपादन करते हैं—रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, सङ्ख्या,

परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व, बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष प्रयत्न, गुरुत्व, द्रवत्व, स्नेह, संस्कार, धर्म, अधर्म, शब्द यही चौबीस गुण हैं। इनमें रूपत्व आदि सभी जातियां हैं। रूप पृथ्वी, जल और तेजमें रहता है। रूप—शुक्ल, कृष्ण, रक्त, पीत, चित्र आदि भेदसे बहुविधरूप पृथिवीमें रहते हैं। अभास्वरशुक्लरूप जलमें रहता है। भास्वर शुक्लरूप तेजमें रहता है। रस पृथिवी तथा जलमें रहता है। उसमें पृथ्वीमें छः रस रहते हैं जैसे—मधुर, लवण, कटु, तिक्त, अम्ल, कषाय। जलमें केवल मधुर रस ही रहता है।

गन्धो द्विविधः–सुरभिरसुरभिश्च पृथिवीमात्रवृत्तिः। स्पर्शः पृथिव्यादिचतुष्टयवृत्तिः। स च त्रिविधः–शीतः, उष्णश्च, अनुष्णाशीतश्च। अनुष्णाशीतस्पर्शो वायुपृथिव्योः, जले शीतः, तेजसि उष्णः। संख्यापरिमाणपृथक्त्वसंयोगविभागा नवद्रव्यवृत्तयः। परत्वापरत्वे पृथिवीजलतेजोवायुमनोवृत्तिनी। बुद्धिसुखदुःखेच्छाद्वेषप्रयत्नभावनाधर्माधर्मा आत्मवृत्तयः।

व्याख्या—सुरभिगन्धः–सुगन्धः असुरभिगन्धो–दुर्गन्धः। चित्रगन्धस्तु नाङ्गीक्रियतेऽवयवभानेनैव निर्वाहात्। पृथिव्यादिचतुष्टयम्-पृथिवीजलतेजोवायवः। संख्यादिगुणपंचकं द्रव्यमात्रवृत्तीत्याह-संख्येति०।

अनुवाद—गन्ध के दो भेद हैं—सुरभि, असुरभि। यह पृथिवीमात्रमें हैं। स्पर्श-पृथिवी, जल, तेज और वायुमें रहता है। स्पर्श तीन प्रकारका है–शीत, उष्ण और अनुष्णाशीत। अनुष्णाशीतस्पर्श वायु तथा पृथिवीमें रहता है। जलमें शीतस्पर्श, तेजमें उष्ण स्पर्श रहता है। संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग और विभाग नवो-द्रव्यवृत्ति है। परत्व तथा अपरत्व पृथिवी, जल, तेज वायु और मनमें रहते हैं। बुद्धयादि नव गुण आत्मामें रहते हैं।

गुरुत्वं पृथिवीजलवृत्ति। द्रवत्वं पृथिवीजलतेजोवृत्ति। तद् द्विविधम्—नैमित्तिकं सांसिद्धिकञ्च। आद्यं पृथिवीतेजसोः, द्वितीयं जले। स्नेहो जलमात्रवृत्तिः। संस्कारः पृथिवीजलतेजोवाय्वात्ममनोवृत्तिः। स त्रिविधः–वेगः, भावना, स्थितिस्थापकश्च। तत्र वेगः पृथिव्यादिचतुष्टयमनोवृत्तिः, द्वितीय आत्मवृत्तिः, तृतीयः पृथिव्यादिचतुष्टयवृत्तिः।

व्याख्या—गुरुत्वलक्षणं प्रागुक्तम्। सांसिद्धिकम्-निमित्तानपेक्षि स्वाभाविकमित्यर्थः। नैमित्तिकं तेजःसंयोगरूपनिमित्तसम्पाद्यम्। आद्यम्-नैमित्तिकम्। पृथिव्यां नैमित्तिकं द्रवत्वं घृतादौ, तेजसि नैमित्तिकं सुवर्णादौ। सः–संस्कारः।

वेगः-वेगत्वजातिमान् वेगः। एष पृथिव्यादिचतुष्टयमनोवृत्तिः। अनुभवजन्या स्मृति-हेतुर्भावना, इयमात्ममात्रवृत्तिः। स्थितिस्थापकश्च-अन्यथा कृतस्य पुनस्तदवस्थाऽऽ-पादकः, कटादिपृथिवीवृत्तिः।

अनुवाद—गुरुत्व पृथिवी जलवृत्ति होता है। द्रवत्व पृथिवी जल और तेज में रहता है। द्रवत्व दो प्रकारका होता है—नैमित्तिक और सांसिद्धिक। नैमित्तिक द्रवत्व पृथिवी-घृतादिमें और तेज-सुवर्णादिमें रहता है और सांसिद्धिकद्रवत्व जलमें। स्नेह जलमात्रमें रहता है। संस्कार पृथिवी, जल, तेज, वायु, आत्मा और मनमें रहता है। वह तीन प्रकारका होता है—वेग, भावना और स्थितिस्थापक। वेग पृथिव्यादि चतुष्टयमें और मनमें रहता है। भावना केवल आत्मामें रहता है। स्थितिस्थापक पृथिव्यादि चतुष्टयमें रहता है।

शब्दो द्विविधः—ध्वन्यात्मकः, वर्णात्मकश्च आकाशमात्रवृत्तिः। रूपरसगन्धस्पर्शस्नेहसांसिद्धिकद्रवत्वशब्दबुद्धिसुखदुःखेच्छाद्वेषप्रयत्न-धर्माधर्मभावना विशेषगुणाः। सङ्ख्यापरिमाणपृथक्त्वसंयोगविभाग-गुरुत्वनैमित्तिकद्रवत्ववेगस्थितिस्थापकाः सामान्यगुणाः।

व्याख्या—ध्वन्यात्मकः शब्दो भेर्यादौ। वर्णात्मकश्च संस्कृतभाषादिरूपः। पुनरपि शब्दस्त्रिविधः—संयोगजो विभागजः शब्दजश्चेति। तत्राद्यो भेरीदण्डसंयोग-जन्यः। द्वितीयो वंशे पाट्यमाने दलद्वयविभागजश्चटचटाशब्दः। भेर्यादिदेशमारभ्य श्रोत्रपर्यन्तद्वितीयादिशब्दाः शब्दजाः। 'रूपं गन्धो रसः स्पर्शः स्नेहः सांसिद्धिको द्रवः। बुद्ध्यादिभावनान्ताश्च शब्दो वैशेषिका गुणाः' इति कारिकोक्तमर्थमाह—रूपेति०। सामान्यगुणाः—विशेषगुणभिन्ना गुणाः।

अनुवाद—शब्द दो प्रकारके हैं—ध्वन्यात्मक, और वर्णात्मक। वह आकाश-मात्रवृत्ति होता है। रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, स्नेह, सांसिद्धिकद्रवत्व, शब्द, बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, धर्म, अधर्म, भावना ये विशेषगुण हैं। संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग, गुरुत्व, नैमित्तिक-द्रवत्व, वेग और स्थितिस्था-पकाख्य संस्कारभेदद्वय सामान्यगुण कहे जाते हैं।

अथ नित्यगुणाः—जलतेजोवायुपरमाणूनां विशेषगुणाः, परमाणु-वृत्तिस्थितिस्थापकश्च, विभूनां परमाणूनाञ्च एकत्वपरिमाणपृथक्त्वानि, ईश्वरेच्छाज्ञानकृतयश्च नित्यगुणाः।

व्याख्या—जले तेजसि वायौ परमाणुषु च वर्त्तमाना रूपादिषु यथासम्भवं योग्या विशेषगुणा नित्याः। परमाणुगतः स्थितिस्थापकाख्यः संस्कारो नित्यः।

विभूनां दिगाकाशादीनां परमाणनाञ्चैकत्वादीनि त्रीणि, ईश्वरस्य इच्छा,तदीयं ज्ञानम्, तत्कृतिश्च नित्यतयाऽभिप्रेयन्ते ।

अनुवाद—नित्यगुण बताते हैं—जल, तेज, वायु और परमाणु के विशेषगुण नित्य हैं । परमाणुनिष्ठ स्थितिस्थापकसंस्कार नित्य हैं । विभु और परमाणु के एकत्व-परिमाण तथा पृथक्त्व नित्य हैं । ईश्वरकी इच्छा, ज्ञान और कृति नित्य हैं ।

अथाप्रत्यक्षगुणाः—गुरुत्वधर्माधर्मभावनास्थितिस्थापकाः, परमाणुद्व्यणुकवृत्तिगुणाः, अतीन्द्रियवृत्तिसामान्यगुणाः, त्रसरेणो रूपं विहाय अन्ये गुणा अतीन्द्रियाः ।

व्याख्या—अप्रत्यक्षाः-इन्द्रियद्वारा ग्रहणायोग्याः । गुरुत्वादयो गुणा न प्रत्यक्षेण गृह्यन्ते किन्तु केवलमनुमीयते । परमाणुद्व्यणुकयोः स्वयमिन्द्रियागोचरतया तद्गुणा अपि न प्रत्यक्षाः । अतीन्द्रियाणि इन्द्रियागोचराणि । त्रसरेणो रूपं प्रत्यक्षं रसादयः पुनरप्रत्यक्षाः । रूपप्रत्यक्षं प्रत्यक्षेक्षितस्याश्रयमहत्त्वस्य सत्त्वात् । अन्येषां तु गुणानामप्रत्यक्षत्वमनुत्कटत्वेनेति बोध्यम् ।

अनुवाद—अप्रत्यक्ष गुणोंका निर्देश करते हैं—गुरुत्व, धर्म, अधर्म, भावना, स्थितिस्थापक, परमाणुगत तथा द्व्यणुकगत गुण, अतीन्द्रियवृत्तिसामान्यगुण और रूपातिरिक्त त्रसरेणुके गुण अतीन्द्रिय हैं ।

रूपरसगन्धस्पर्शस्नेहप्रत्यक्षे महद्वृत्तित्वे सत्युद्भूतत्वं प्रयोजकम् । सामान्यगुणप्रत्यक्षे त्वाश्रयप्रत्यक्षम् । बुद्धिप्रत्यक्षे स्ववृत्तिविशिष्टज्ञानत्वम्, सुखादिप्रत्यक्षे स्ववृत्तिसुखत्वादिकमेव । अन्त्याद्यशब्दौ विहाय सर्वः शब्दः प्रत्यक्षः ।

व्याख्या—रूपस्य, रसस्य, गन्धस्य, स्पर्शस्य, स्नेहस्य, च प्रत्यक्षे महद्वृत्तित्वे सति उद्भूतत्वं प्रयोजकम्, अर्थात् रूपादीनां प्रत्यक्षे महद्वृत्तित्वमुद्भूतत्वं च कारणमिति । सामान्यगुणानां विशेषगुणातिरिक्तगुणानां प्रत्यक्षे आश्रयप्रत्यक्षं प्रयोजकम् । बुद्धिप्रत्यक्षे स्ववृत्तिविशिष्टज्ञानत्वं प्रयोजकं वेद्यम् । अन्त्यः शब्दोऽप्रत्यक्षस्तथैवाद्योऽपि, तयोरस्फुटत्वात् ।

अनुवाद—रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और स्नेहके प्रत्यक्षमें महद्वृत्तित्व और उद्भूतत्व प्रयोजक है । सामान्यगुणप्रत्यक्षके प्रति आश्रयप्रत्यक्ष प्रयोजक है । बुद्धिप्रत्यक्ष के प्रति स्ववृत्तिविशिष्टज्ञानत्व प्रयोजक है एवं सुखादि प्रत्यक्षके प्रति स्ववृत्तिसुखत्वादि प्रयोजक होता है । अन्त्य और आद्य शब्दको छोड़कर सब शब्द प्रत्यक्ष है ।

अथ गुणोत्पत्तिप्रक्रिया-अवयववृत्तिविशेषगुणा अवयविनि स्व-

समानजातीयगुणानारभन्ते। पृथिवीविशेषगुणाः पाकजाः, ते द्विविधाः– पाकप्रयोज्याः पाकजन्याश्च। कारणगुणप्रक्रमजन्याः, अग्निसंयोगजन्या द्वितीयाः।

व्याख्या—अवयववृत्तयः कपालाद्यवयवेषु वर्तमाना विशेषगुणाः रूपादयो विशेषगुणा अवयविनि घटादौ स्वसमानजातीयगुणान् स्ववृत्तिरूपत्वादिव्याप्यजाति-मतो गुणान् आरभन्ते जनयन्ति। प्राकप्रयोज्याः-पाकेन परम्परयोत्पाद्याः। पाकजन्याः– पाकेन साक्षादुत्पाद्याः। कारणगुणप्रक्रमजन्याः–कारणगुणानुत्पाद्य जन्याः, एवमेव परम्परा। द्वितीयाः–पाकजन्याः, अत्र साक्षाज्जन्याः।

अनुवाद—अवयवमें रहनेवाले विशेषगुण अवयवीमें स्वसमानजातीय गुणोंको उत्पन्न करते हैं। पृथिवीगत विशेषगुण पाकज होते हैं। पाकजगुण दो तरहके हैं– पाकप्रयोज्य तथा पाकजन्य। जहां पाकसे कारणगुणारम्भ द्वारा कार्यगुणारम्भ होता है वह पाकप्रयोज्य है। अग्निसंयोगसे जन्य गुण पाकज हैं। अग्निपद यहाँ तेजका उपलक्षण जानना चाहिये।

श्यामघटे अग्निसंयोगेन श्यामरूपनाशानन्तरं घटे रक्तं रूपमुत्पद्यते इति नैयायिकमतम्। अग्निसंयोगेन परमाणौ पाके सति परमाणुषु रक्तरूपमुत्पद्यते पुनर्घटोत्पत्तौ सत्यां कारणगुणप्रक्रमेण घटे रक्तरूप-मुत्पद्यते इति वैशेषिकमतम्। कपालं नीलमेकं, पीतञ्चैकं यदि, तदा घटे चित्ररूपमुत्पद्यते। रसादावेवं सति अवयविनि रसो न जायते, चित्ररसाद्यस्वीकारात्।

व्याख्या—पाकजरूपोत्पतौ मतद्वयम्, एकं नैयायिकानामपरं च वैशेषिकाणाम्। आद्ये श्यामघटे वह्नौ क्षिप्ते तत्तापेन तच्छ्यामता नश्यति रक्तं च रूपमुत्पद्यते, अर्थात् प्राक्तनो गुणो नश्यति नवो गुणः प्रादुरास्ते घटश्च तदवस्थ इति हृदयम्। द्वितीये पुनर्भते घटे वह्नौ क्षिप्यमाणे तत्तापेन घटपरमाणवो रक्ताः क्रियन्ते, तैश्च रक्तपरमाणुभि पुना रक्तो घटः प्रादुर्भाव्यते, अत्र कारणे परमाणौ गुणस्य प्रक्रमस्तद्द्वारेण चावय-विनि घटादौ रूपोत्पत्तिरिति रहस्यम्। चित्रं रूपमास्थीयतेऽन्ये च रसगन्धादयश्चित्रा नाङ्गीक्रियन्ते तदा—कपालमिति०। रसस्थलेऽज्ञतः कटुत्वेऽशतश्च माधुर्ये वर्त्त-माने चित्रो रसो नास्थीयते किन्त्ववयवरसभानमेव प्रामाणिकमभ्युपेयते इति भावः।

अनुवाद—श्यामघटमें अग्निसंयोग होनेसे श्यामरूपका नाश हो जाता है और घटमें रक्तरूपकी उत्पत्ति होती है यह नैयायिकोंका मत है। अग्निसंयोग होनेसे

परमाणु पककर रक्त हो जाते हैं फिर उन रक्तपरमाणुओंसे रक्तघटकी उत्पत्ति होती है। उसमें कारणभूत परमाणुके गुणको बदलकर घटमें रक्तरूप होता है यह वैशेषिक मत है। एक कपाल नीलवर्ण दूसरा पीतवर्ण हो और दोनों मिलकर घट बनावें तब चित्ररूपकी उत्पत्ति होती है। रसादिमें अवयवोंमें भिन्न-भिन्न रसोंके रहनेपर एक नया रस नहीं उत्पन्न होता है, क्योंकि चित्र रसादि स्वीकृत नहीं है (ऐसे स्थलमें अवयवगत रसादिके भानसे ही निर्वाह होना माना गया है।)

गुरुत्वस्थितिस्थापकयोश्च कारणगुणप्रक्रमजन्यता। द्वित्वादयोऽपेक्षाबुद्धिजन्याः। परिमाणं चतुर्विधम्—अणु, महत्, ह्रस्वम्, दीर्घञ्च। कारणगुणप्रक्रमजन्यं स्वावयवबहुत्वं महत्त्वजनकं यथा त्रसरेणूनाम् अवयवानां शिथिलः संयोगः प्रचयोऽपि तज्जनकः, यथा तूलस्य परिमाणम्।

व्याख्या—गुरुत्वस्य स्थितिस्थापकस्य च लक्षणे प्रागुक्ते। कारणगुणप्रक्रमजन्यता=कारणेषु गुणः पूर्वमाप्तजन्मा कार्येषु प्रसरतीति। अयमाशयः—गुरुत्वं स्थितिस्थापकाख्यः संस्कारश्च स्वाश्रयद्रव्ये तत्कारणपरमाण्वादौ प्रादुर्भूयैव सम्भवतीति। अयमेकः अयमेकः इतीमौ द्वावेवंक्रमेणापेक्षाबुद्धया द्वित्वादि जन्यते। नानैकत्वावगाहिनी बुद्धिरपेक्षाबुद्धिरिति च तल्लक्षणम्। अणुमहदित्यादिषु भावप्रधानं निर्देशमास्थायाणुत्वमहत्त्वदीर्घत्वानि परिमाणानीति बोध्यम्। महत्त्वजनकं स्वावयवबहुत्वम्, तच्च कारणगुणप्रक्रमजन्यम्। प्रचयोऽपि परिमाणजनकः, प्रचयश्चावयवानां शिथिलः संयोगः। शिथिलत्वं जातिविशेषः।

अनुवाद—गुरुत्व तथा संस्कारभेदरूप स्थितिस्थापक कारणगुणप्रक्रमजन्य होते हैं। द्वित्व आदि अपेक्षाबुद्धिजन्य हैं। परिमाणके चार भेद हैं—अणु, महत्, ह्रस्व, दीर्घ। कारणगुणप्रक्रमजन्य स्वावयवबहुत्व महत्त्वका जनक होता है जैसे त्रसरेणुका। अवयवोंके शिथिलसंयोगको प्रचय कहते हैं, वह भी महत्त्वजनक है, जैसे तूलपरिणाम।

पृथक्त्वं कारणगुणप्रक्रमजन्यम्। ननु तत्र किं प्रमाणम्? घटात् पटः पृथगिति प्रत्यक्षम्। तस्यान्योन्याभावविषयकत्वमिति चेन्न, अन्योन्याभावप्रत्यये प्रतियोग्यनुयोगिनोः समानविभक्तिकत्वनियमात्, यथा 'घटः पटो न' इति। अन्योन्याभावस्य पृथक्त्वरूपत्वे घटात् पटो नेत्यपि प्रयोगापत्तेः। न चैवं घटादन्यः पट इत्यत्र कथमन्योन्याभावप्रतीतिरिति वाच्यम्। अन्यत्वस्यापि पृथक्त्वरूपत्वात्।

व्याख्या—पृथक्त्वं गुणः प्रथमं कारणे जन्यते ततः कार्यभूते द्रव्ये तदाह—कारणगुणेति०। प्रत्यक्षमेव चात्र मानं पृथक्त्वे तत्प्रश्नोत्तरमुखेन व्यवस्थापयति—नन्विति०। ननु पृथक्त्वकार्यमन्योन्याभाव एव निर्वक्ष्यति कृतं पृथक् पृथक्त्वस्वीकारेणेति शङ्कामनुदति—अन्योन्याभावेति० यस्याभावः स प्रतियोगी। वैधिक्यमनुयोगित्वं प्रतियोगित्वञ्च, तत्परिचयश्च पञ्चम्यन्तपदोपस्थाप्यः प्रतियोगी प्रथमान्तपदोपस्थाप्यश्चानुयोगीत्येवं कार्यः। अन्योन्याभावः पृथक्त्वाद्भिन्नः, पृथक्त्वस्थले पञ्चम्यन्तपदोपस्थाप्यस्य प्रतियोगित्वम्। अन्योन्याभावस्थले द्वयोरपि प्रथमान्तत्वे प्रागुक्तः प्रतियोगीति बोध्यम्। अन्योन्याभावात्पृथक्त्वस्य भिन्नत्वे कारिकावत्यपि प्रमाणम्—'अन्योन्याभावतो नास्य चरितार्थत्वमिष्यते। अस्मात् पृथगिदं नेति प्रतीतिर्हि विलक्षणा'। यद्यन्योन्याभावः पृथक्त्वं चैकत्वेन स्वीक्रियते, तदा घटात् पटो नेति प्रसज्येत। ननु शब्दवैलक्षण्यमेवात्र नार्थवैलक्षण्यमिति चेन्न, विनार्थभेदं घटात्पृथगितिवद्घटो न पट इत्यत्रापि पञ्चमीप्रसङ्गात्। तस्माद्यदर्थयोगे पञ्चमी सोऽर्थो नञर्थान्योन्याभावतो भिन्नो गुणान्तरं कल्प्यते।

अनुवाद—पृथक्त्व कारणगुणप्रक्रमजन्य गुण है—अर्थात् वह पहले कारणमें पैदा होता है तदनन्तर तदारब्ध द्रव्यमें तद्द्वारा उत्पन्न होता है। उसमें क्या प्रमाण इसका उत्तर यही है कि प्रत्यक्ष। वह प्रत्यक्ष जिससे आप पृथक्त्वको प्रमाणित करना चाहते हैं, अन्योन्याभाव-विषयक ही क्यों न मान लिया जाय? इस प्रश्नका उत्तर यह है पृथक्त्व प्रत्यक्षतयाऽभिमतस्थलमें प्रतियोगिभूतसे पञ्चमी होगी और अन्योन्याभावप्रत्ययस्थलमें प्रतियोगी और अनुयोगी का समान विभक्तिक होना आवश्यक है। जैसे 'घटो न पटः'। यही भेद है। यदि दोनों—अन्योन्याभाव और पृथक्त्व एक हो जायगा तब 'घटात् पटो न' ऐसा प्रयोग होने लगु जायगा। शङ्का—यदि अन्योन्याभावप्रत्ययस्थलमें समानविभक्तिक प्रतियोगी और अनुयोगी अपेक्षित है, यह नियम मानें तब 'घटादन्यः पटः' यहाँ अन्योन्याभाव प्रतीति कैसे होगी? उत्तर—अन्यत्व भी पृथक्त्व रूप ही है। (अतः पञ्चमी है)।

संयोगस्त्रिविधः—अन्यतरकर्मजः, उभयकर्मजः, संयोगजश्चेति। आद्यो यथा-मतःकर्मणा आत्ममनसोः संयोगः। द्वितीयो यथा—मेषयोः कर्मणा तयोः संयोगः। तृतीयो यथा-हस्ततरुसंयोगात् कायतरुसंयोगः।

व्याख्या—संयोगं प्रति कर्मणः कारणत्वस्य—'संयोगविभागयोरनपेक्षकारणं कर्मेति सूत्रेस्वीकृतत्वेन तद्भेदकाले कर्मपरामृष्टं बोध्यं कर्मज इत्यत्र। अन्यतरकर्मजः-संयुज्यमानपदार्थद्वयमध्ये एकस्य कर्मणा प्रयत्नेन जात इत्यर्थः। मनःकर्मणेति०

अत्रैकस्य मनसः कर्मणाऽऽत्ममनसोः संयोगः । उभयकर्मजो मेषयोः, संयोगः तौ हि परस्पराघाते द्वावपि धावतः संयुज्येते च । हस्तस्य तरुणा संयोगे ततः कायस्य तरुणा संयोग इत्यर्थः । स चायं परम्परासंयोग इति बोध्यम् । उक्तं च कारिकावल्याम्—'कीर्त्तितस्त्रिविधस्त्वेष आद्योऽन्यतरकर्मजः । तथोभयस्पन्दनजन्यो भवेत्संयोगजोऽपरः ॥ आदिमः श्येनशैलादिसंयोगः परिकीर्त्तितः । मेषयोः सन्निपातो यः स द्वितीय उदाहृतः । कपालतरुसंयोगात्संयोगस्तरुकुम्भयोः । तृतीयः स्यात्' ॥

अनुवाद—संयोगके तीन भेद हैं—अन्यतरकर्मज, उभयकर्मज, संयोगज । प्रथम—मनके कर्मसे जन्य आत्ममनःसंयोग । द्वितीय—भेड़ोंके व्यापारसे होनेवाला उनका संयोग । तृतीय—हाथ और वृक्षके संयोगसे देह और वृक्षका संयोग ।

विभागोऽपि त्रिविधः—अन्यतरकर्मजः, उभयकर्मजः, विभागजश्च । आद्यो यथा—मनःकर्मणा आत्ममनसोर्विभागः । द्वितीयो यथा—मेषयोः कर्मणा तयोर्विभागः । विभागजविभागो द्विविधः—कारणमात्रविभागजः, कारणाकारणविभागश्च । आद्यो यथा—कपालकर्मणा कपालद्वयविभागः, ततः कपालद्वयसंयोगनाशः, ततो घटनाशः, ततः कपालस्याकाशादिदेशाद्विभागजो विभागः ।

व्याख्या—विभागोऽपि त्रिविध इत्यत्रापिशब्दः संयोगत्रैविध्यं पूर्वोक्तमपेक्ष्य प्रयुक्तः । क्रमश उदाहरणान्याह—आद्य इत्यादिना । कारणाकारणविभागश्चेति० तदुक्तम्—'कारणाकारणविभागात् कार्याकार्यविभागः' इति० ।

अनुवाद—विभाग तीन प्रकारका होता है—अन्यतरकर्मज, उभयकर्मज और विभागज । १—मनकी क्रियासे आत्मा और मनका विभाग । २—भेड़ोंकी क्रियासे उनका विभाग । ३—विभागजविभाग दो-दो प्रकारका है—१-कारणमात्र-विभागज, २—कारणाकारण-विभागज । ३—कारणमात्रविभागज विभागका उदाहरण—कपालकी क्रियासे कपालद्वयका विभाग, अनन्तर कपालद्वयसंयोगनाश, उससे घटनाश, अनन्तर कपालका आकाशादि देशसे विभाग ।

न च विभागः स्वोत्पत्त्यनन्तरमेव विभागजविभागं जनयत्विति वाच्यम्, द्रव्यनाशसहकृतस्यैव तस्य तज्जनकत्वात् । तत्र द्रव्यस्य प्रतिबन्धकत्वेन सति द्रव्ये तदसम्भवात् । न च कर्मैव एकदा कपालद्वयविभागमाकाशकपालविभागञ्च जनयत्विति वाच्यम्, यद्द्रव्यानारम्भकसंयोगविरोधिनं विभागमारभते, न तद् द्रव्यारम्भकसंयोग-

विरोधिनम्, अन्यथा विकसत्कमलकुड्मलदलकर्मण्यतिव्याप्तिः। न च संयोगेऽप्येवमस्तु, तत्र अविरोधात्।

व्याख्या—विभागजविभागस्येयं प्रक्रिया, यत्तत्र प्रथमक्षणे एकत्र कपाले कर्म, द्वितीये कपालद्वितयविभागः, ततो घटारम्भकसंयोगनाशः, ततो घटनाशः, ततस्तेनैव कपालविभागेन सकर्मणः कपालस्याकाशविभागो जन्यन्ते, ततः आकाशसंयोगनाशः, तत उत्तरदेशसंयोगः, ततः कर्मनाशः (कपालनिष्ठक्रियानिवृत्तिः) एवं सप्तक्षणपर्यन्तं कर्मणः स्थितिरष्टमे तस्य निवृत्तिः। तत्र शङ्कते—न चेति० स्वोत्पत्त्यनन्तरम्—तृतीये क्षण इत्यर्थः। अयमाशयः—अयं विभागो द्वितीयक्षणे जातो द्रव्यनाशादिप्रतीक्षां विहाय तृतीयक्षण एव विभागजविभागमुत्पादयत्विति शङ्का। द्रव्यनाशसहकृतस्य—तदपेक्षस्य न, च कर्मैव—कपालद्वयविभागजनकाद्यव्यापार एव। उक्तश्चायमर्थः स्पष्टतया मुक्तावल्यां—न च तेन कर्मणैव कथं देशान्तरविभागो न जन्यत इति वाच्यम्, एकस्य कर्मण आरम्भकसंयोगप्रतिद्वन्द्विविभागजनकत्वस्यानारम्भकसंयोगप्रतिद्वन्द्विविभागजनकत्वस्य च विरोधात्। अन्यथा विकसत्कमलकुड्मलभङ्गप्रसङ्गात्। अन्यथा—आरम्भकसंयोगप्रतिद्वन्द्विविभागजनककर्मणोऽनारम्भकसंयोगप्रतिद्वन्द्विविभागजनककर्मणश्चैक्ये। विकसदिति०—तत्रावयवच्छेदेनानारम्भकसंयोगप्रतिद्वन्द्विविभागजनककर्मणः सत्त्वात्तेन कर्मणा मूलावच्छिन्नारम्भकसंयोगविरोधिविभागोत्पत्तिस्तेन चारम्भकसंयोगनाशस्तेन कमलनाशः स्यादिति।

अनुवाद—शङ्का—द्वितीयक्षणसम्भवी विभाग अपनी उत्पत्तिके बाद विभागजविभागको क्यों नहीं उत्पन्न करता है? उत्तर—उसमें द्रव्यनाश की भी अपेक्षा है क्योंकि द्रव्य उसमें प्रतिबन्धक है, द्रव्यके रहते वह नहीं हो सकेगा। शङ्का—आप एक कपालकर्म साथ ही साथ कपालद्वयविभाग और आकाशकपालविभाग दोनों को उत्पन्न करेगा? उत्तर—जो कर्म द्रव्यानारम्भकसंयोगविरोधी विभागका पैदा करता है वह द्रव्यारम्भकसंयोगविरोधी विभागको नहीं पैदा कर सकता है (आरम्भकत्वके साथ अनारम्भकत्व का विरोध है)। अन्यथा कमलकुड्मलका विकास ही उसका भङ्ग हो जायगा। संयोग में ऐसा विरोध नहीं है अतः वहाँ ऐसा नहीं होता।

विशेष—प्रशस्तपादभाष्यमें विभागजविभागका बहुत विमर्श किया है—इसको अति कठिन माना है; लिखा है—'द्वित्वे चापाकजोत्पत्तौ विभागे च विभागजे। यस्य न स्खलिता बुद्धिस्तं वै वैशेषिकं विदुः'।

द्वितीयस्तु कारणाकारणविभागात् कार्याकार्यविभागः, यथा करतरुविभागात् कायतरुविभागः। परत्वापरत्वोत्पत्तिः कालप्रकरण उक्ता।

व्याख्या—कारणाकारणविभागात् कायतरुविभाग इति विभागजविभागद्वितीय-प्रभेदस्योदाहरणम्, अत्र करक्रियया करतरुविभागस्ततः शरीरेऽपि विभक्तप्रत्ययः, तत्र करतरुविभागे करक्रिया न कारणं व्यधिकरणत्वात्, तरौ तु क्रिया नास्त्येव अतस्तत्र कारणाकारणविभागेन कार्याकार्यविभागः।

अनुवाद—कारण और अकारणके विभागसे होनेवाला कार्याकार्यविभाग द्वितीय है। यथा—करतरुविभागसे कायतरुविभाग। परत्व और अपरत्वकी उत्पत्ति काल-प्रकरणमें कही है।

बुद्धिर्ज्ञानम्, तद्द्विविधं स्मरणमनुभवश्च। स्मरणमपि द्विविधम्, यथार्थमयथार्थञ्च। तद्वति तत्प्रकारकत्वं यथार्थत्वम्, तदभाववति तत्प्रकारकत्वमयथार्थत्वम्। पूर्वानुभवः संस्कारद्वारा स्मरणं जनयति। तत्र पूर्वानुभवस्य यथार्थत्वायथार्थत्वाभ्यां स्मरणमपि उभयरूपं भवति।

व्याख्या—ज्ञानत्वं बुद्धिसामान्यलक्षणम्, तच्च जानामीत्यनुव्यवसायगम्यम्। तत्-ज्ञानम्। स्मरणञ्चानुभवजन्यं ज्ञानम्। स्मृतिभिन्नं ज्ञानमनुभवः। तद्वतीति० सप्तम्यर्थो विशेष्यत्वम्, तस्य च निरूपितत्वसम्बन्धेन तत्प्रकारकत्वेऽन्वयः, तथा च तद्वन्निष्ठविशेष्यतानिरूपिततन्निष्ठप्रकारताशालित्वं यथार्थत्वम्। एवमयथार्थमपि परिष्करणीयम्। तत्पदमत्र सर्वत्र प्रकारीभूतधर्मोपस्थापकम्। पूर्वानुभवः—पूर्वत्र जातं ज्ञानम्। संस्कारद्वारा मध्ये संस्कारं निमित्तीकृत्य। ज्ञानस्य त्रिक्षणावस्थायित्वेन कालान्तरभाविस्मरणं प्रति निमित्तता मध्यस्थितसंस्कारद्वारा जन्यत इति भावः। स्मरणस्य स्वतो यथार्थत्वमयथार्थत्वञ्च नास्ति किन्तु स्वजनकपूर्ववृत्तज्ञानयथार्थत्वादिद्वारैवेति वक्तुम्-पूर्वानुभवस्येति।

अनुवाद—'ज्ञानम्' यह बुद्धिका लक्षण है। वह दो प्रकार की है—स्मरण तथा अनुभव। स्मरण भी दो प्रकार का होता है—यथार्थ तथा अयथार्थ। तद्वान् में तत्प्रकारक ज्ञानको यथार्थ कहते हैं। (जैसे—रजतमें 'इदं रजतम्' यह ज्ञान यथार्थ है क्योंकि वह रजतत्ववान् रजतमें रजतत्वप्रकारक ज्ञान है) तदभाववान् में तत्प्रकारक ज्ञान अयथार्थ ज्ञान है। (जैसे रङ्गमें 'इदं रजतम्' यह ज्ञान। रजतत्वाभाववान् रङ्गमें रजतत्व प्रकारक ज्ञान होनेसे वह अयथार्थ है) पूर्वानुभव संस्कार द्वारा स्मरण का जनक होता है। अनुभव दो प्रकार का है यथार्थ और अयथार्थ, अतः स्मरण भी दो प्रकार का होगा—यथार्थ और अयथार्थ।

अनुभवो द्विविधः—प्रमा, अयथार्थञ्च। तत्र प्रमा चतुर्विधा, सा वक्ष्यते। अयथार्थज्ञानं—संशयः, विपर्ययः, स्वप्नः-अनध्यवसायश्चेति।

संशयो यथा—समानधर्मवद्धर्मिज्ञानविशेषादर्शनकोटिद्वयस्मरणैरय स्थाणुर्वा पुरुषो वेति ज्ञानं जन्यते-स एव संशयः। विपर्ययस्तु-समानधर्मवद्धर्मिज्ञानविशेषादर्शनैककोटिस्मरणैः शुक्ताविदं रजतमिति ज्ञानं जयन्ते। तत्र गुरुमते—इदमित्यनुभवात्मकं ज्ञानम्, रजतमिति स्मरणात्मकम्। तेन ग्रहणस्मरणात्मकं ज्ञानद्वयं, न तु रजतत्वविशिष्टज्ञानमिदम्, अन्यस्यान्यथाभानसामग्र्यभावात्।

व्याख्या—अनुभवभेदावाह अनुभव इति० प्रमालक्षणं वक्ष्यते। अयथार्थज्ञानस्य लक्षणं प्रागुक्तं सम्प्रति तद्भेदानाह—संशय इति०। 'स्थाणुर्वा पुरुषो वा' इत्याकारकं ज्ञानं संशयः, तल्लक्षणं यथा एकस्मिन् धर्मिणि विरुद्धनानाधर्मवैशिष्ट्यज्ञानं संशयः। एतादृशज्ञानोदये कारणानि निर्देक्ष्यति-समानेति। मिथ्याज्ञानं विपर्ययः, स चायं भ्रम इत्यप्याख्यायते। 'स्थाणुर्वा पुरुषो वे'ति संशयस्थले समानो धर्म उन्नतत्वादिरूपस्तद्वन्तौ पुरुषस्थाणू। विशेषः करचरणादिमत्त्वम्। कोटिद्वयम्-'पुरुषोऽयम्' 'स्थाणुरयम्' इत्याकारककोटिद्वयम्। विपर्ययस्थले शुक्ताविदं रजतमिति ज्ञाने समानो धर्मश्चाकचिक्यादिरूपः, एककोटिस्मरणं दृष्टिदोषादिना रजतत्वकोटयुदयः। गुरवः—प्रभाकराः। ते हि भ्रमात्मकं ज्ञानं न मन्यन्ते, भ्रमस्थले ज्ञानद्वयं स्वीकुर्वन्ति ग्रहणस्मरणात्मकम्। इदं भ्रमात्मकं-'शुक्तौ रजतम्' इति ज्ञानम्। रजतत्वविशिष्टम्-रजतत्वविशेष्यकम्। अन्यस्य—शुक्तिकादेः। अन्यथाभानसामग्र्यभावात्—शुक्तिकादे रजतत्वेन रूपेण भानस्य सामग्र्या असत्त्वात्।

अनुवाद—अनुभव दो प्रकारका है, प्रमा और अयथार्थ। प्रमाके चार भेद हैं, उसका विवेचन आगे होगा। अयथार्थ ज्ञान चार प्रकारका है—'संशय, विपर्यय, स्वप्न, अनध्यवसाय। संशयमें समानधर्मवाले धर्मियोंका ज्ञान। विशेषादर्शन और कोटिद्वयस्मरण यही कारण हैं, यथा—'स्थाणुर्वा पुरुषो वा' यह ज्ञान। विपर्ययमें—समानधर्मवाले धर्मियोंका ज्ञान, विशेषादर्शन और एक कोटिस्मरण यही कारण हैं, जसे शुक्तिमें 'इदं रजतम्' यह ज्ञान। प्रभाकर-मतानुयायी मीमांसक लोग विपर्यय ज्ञानको ग्रहणस्मरणात्मक ज्ञानद्वय मानकर भ्रम नहीं मानते हैं। वे रजतांशमें स्मरण तथा शुक्त्यंशमें प्रत्यक्ष या ग्रहण मानते हैं। इस ज्ञानको वे रजतत्व-विशिष्ट नहीं मान सकते हैं क्योंकि शुक्त्यादिको रजतत्वेन भानकी सामग्री नहीं है।

विशेष—प्रशस्तपादभाष्यमें इसीका विवेचन इस प्रकार है। बुद्धिर्द्विविधा-विद्या अविद्या च, अविद्या चतुर्विधा—संशय-विपर्यय-स्वप्नानध्यवसायभेदात्। (संशयविपर्ययौ

प्रागुक्तौ। स्वप्नः प्रसिद्ध एव। अनध्यवसायश्च—'व्यासङ्गादनर्थित्वाद्वा किमित्यालोचन मात्रमनध्यवसायः'। स्वप्न तीन प्रकारका होता है क्योंकि उसके तीन कारण हैं—संस्कारपाटव, धातुदोष, अदृष्ट। साधारणतः मनुष्य जिस बात का ध्यान करता है अथवा जिसे देखनेसे मनपर प्रबल संस्कार पड़ता है उस वस्तु को स्वप्नमें देखता है, यह संस्कारपाटव निमित्तक स्वप्न है। धातुदोष का अर्थ है-वात, पित्त और कफकी विकृति। वातदोषसे आकाशभ्रमणका स्वप्न, पित्तदोषसे अग्निदाहादि स्वप्न और कफदोष से जलप्लवादि स्वप्न दीखते हैं। अदृष्टवश स्वप्न वह है जिसमें अदृष्टवश मनुष्य अदृष्टश्रुत वस्तुको स्वप्नमें देखता है।

प्रवृत्तिश्च स्वतन्त्रोपस्थितेष्टभेदाग्रहात्। नैयायिकमते प्रवर्त्तकम्-विशिष्टज्ञानं, तेन भ्रमः सिध्यति। स्वप्नस्तु अनुभूतपदार्थस्मरणेरदृष्टेन धातुदोषेण च जन्यते। अनध्यवसायश्च किञ्चिदिति ज्ञानं विशेषादर्शनाद् भवति। अत्र यद्ययं निर्वह्निः स्यात्तदा निर्धूमः स्यादिति तर्को विपर्ययमध्ये बोध्यः। तत्र नैयायिकमते स्वप्नानध्यवसायौ विपर्ययमध्ये प्रविष्टौ। तेन तन्मतेऽयथार्थज्ञानं द्विविधं-संशयो विपर्ययश्चेति।

व्याख्या—प्रवृत्तिः-शुक्तौ रजतबुद्धया ग्रहणं प्रति व्यापारः। स्वतन्त्रोपस्थितेष्टभेदाग्रहात्-अन्यत्र दृष्टादिष्टाभ्यर्थिताद्रजतादत्र शुक्तिगते रजते भेदज्ञानस्यानुदयात्। नैयायिकास्त्वत्रापि रजतत्वविशेष्यकं ज्ञानं प्रवर्त्तकमातिष्ठन्ते तेन भ्रमः सिद्धयति। अनध्यवसायः—अप्रतिपत्तिरूपोऽस्ति किञ्चिदिति सामान्यतो बोधः। अत्र-भ्रमचातुर्विध्यवादे।

अनुवाद—शुक्तिमें रजतबुद्धया जो प्रवृत्ति होती है उस प्रसङ्गमें प्रभाकरका मत है कि इदंस्थरजतसे इस शुक्ति रजतमें भेदज्ञान नहीं होनेसे ही प्रवृत्ति होती है। नैयायिकोंके मतमें विशिष्टज्ञान प्रवर्त्तक होता है अतः उन्हें भ्रम स्वीकार करना पड़ता है। स्वप्नके प्रति तीन कारण हैं—अनुभूतपदार्थस्मरण, अदृष्ट तथा धातुदोष। अनध्यवसाय विशेषादर्शनसे होता है—'अस्ति किञ्चित्' यही उसका आकार है। इस मतमें—यदि यह 'निर्वह्नि होता तो निर्धूम होता' इस तर्कको विपर्ययान्तर्गत मानना चाहिए। नैयायिकमतमें स्वप्न और अनध्यवसाय विपर्यय स्वरूप हैं। अतः उनके मत में अयथार्थ ज्ञानके दो ही भेद हैं—संशय और विपर्यय।

सुखं धर्मजन्यम्। दुःखमधर्मजन्यम्। इच्छा इष्टसाधनताज्ञानजन्या। द्वेषोऽनिष्टसाधनत्वज्ञानजन्यः।

कृतिस्त्रिविधा—जीवनयोनियत्नरूपा, प्रवृत्तिः, निवृत्तिश्च। आद्या जीवनादृष्टजन्या। द्वितीया—इच्छाजन्या। तृतीया-द्वेषजन्या।

व्याख्या—धर्मजन्यम्–धर्मेण जननीयम्, इदं न स्वरूपकथनं निमित्तनिर्देशः, स्वरूपं तु 'अनुकूलवेदनीयम्' इत्येव । अत्र धर्मत्वेन सुखत्वेन कार्यकारणभाव इति प्राञ्चः । नव्यास्तु 'नित्यं ज्ञानमानन्दं ब्रह्मे'ति श्रुत्या भगवति नित्यसुखसिद्धौ धर्मस्य कार्यतावच्छेदकं जन्यसुखत्वमेवेत्याहुः ।

दुःखलक्षणं—'प्रतिकूलवेदनीयम्' इति । अत्राधर्मत्वेन दुःखत्वेन कार्यकारणभावः । इच्छालक्षणं कामं इति, तत्र कारणं चेष्टसाधनताज्ञानम् । सर्वो हि लोकस्तदेवेच्छति यदिष्टसाधनमवगच्छति ।

अनिष्टसाधनताज्ञानत्वम् अत्र द्विष्टसाधनताज्ञानं बोध्यम् । द्वेषं प्रति यथा द्विष्टसाधनताज्ञानस्य जनकत्वं तथैव बलवदिष्टसाधनत्वज्ञानस्य प्रतिबन्धकत्वमपि मन्यते तेन नान्तरीयदुःखजनके पाकादौ न द्वेषः ।

जीवनयोनियत्नत्वम्—साहजिकप्राणसंचारयत्नत्वम् । प्रवृत्तित्वं रागजन्यतावच्छेदकतया सिद्धो जातिविशेषः । निवृत्तित्वं च द्वेषजन्यतावच्छेदकतया सिद्धो जातिविशेषः ।

अनुवाद—सुख धर्मजन्य है । दुःख अधर्मजन्य है । इच्छा इष्टसाधनताज्ञानजन्य होती है । द्वेष अनिष्टसाधनताज्ञानजन्य है ।

कृति तीन प्रकार की है—जीवनयोनियत्नरूप, प्रवृत्तिरूप तथा निवृत्तिरूप । आद्य जीवनयोनियत्नरूपकृतिमें जीवनादृष्ट कारण होता है । प्रवृत्तिके लिये इच्छा कारण होती है । निवृत्ति द्वेषजन्य होती है ।

धर्मः श्रुतिविहितकर्मजन्यः । अधर्मः श्रुतिविरुद्धाचरणजन्यः । वेगाख्यः संस्कार आद्यक्रियाजन्यो द्वितीयादिक्रियाजनकश्च । यथा वेगेन बाणश्चलतीति । भावनाख्यः संस्कारो विशिष्टज्ञानजन्यः । स्थितिस्थापकाख्यः संस्कारः कारणगुणप्रक्रमजन्यः ।

व्याख्या—श्रुतिपदं तत्तद्धर्ममूलभूतग्रन्थपरं बोध्यम् । अत एवान्यधर्मलक्षणान्यपि संगृहीतानि बोध्यानि । धर्माधर्मौ च सुखदुःखयोरसाधारणकारणे । तौ चाप्रत्यक्षावप्यागमानुमानाभ्यां गम्येते, तथा हि—देवदत्तस्य शरीरादिकं देवदत्तविशेषगुणजन्यं कार्यत्वे सति देवदत्तस्य भोगहेतुत्वात्, देवदत्तस्य प्रयत्नजन्यवस्तुवत् । यश्च शरीरादिजनक आत्मविशेषगुणः स एव धर्मोऽधर्मश्च प्रयत्नादीनां शरीराद्यजनकत्वादिति तत्रानुमानप्रयोगस्तर्कभाषायामुक्तः।मुक्तावलीकारास्तु–यागादिव्यापारतया धर्मः कल्प्यते, अन्यथा यागादीनां चिरविनष्टतया निर्व्यापारतया च कालान्तर-

भाविस्वर्गादिजनकत्वं न स्यात्, तदुक्तमाचार्यैः—'चिरध्वस्तं फलायालं न कर्मातिशयं विना' इत्याहुः। संस्कारत्वजातिमतः संस्कारस्य त्रैविध्यमुक्तं सम्प्रति प्रत्येकमुदाहरति—वेगाख्य इति०। वेगाख्यं संस्कारम् आद्या क्रिया जनयति, ततश्च वेगो द्वितीयादिक्रियां प्रवर्त्तयतीति भावः। यथा बाणे प्रहीयमाणे प्रथमा गतिराद्यां धानुष्ककक्रियामपेक्षते परतश्चाद्यया तत्क्रियया जनितो वेगः प्रवर्त्तयति बाणमिति। विशिष्टज्ञानजन्यः—अनुभवजन्यः, तद्विषयकसंस्कारं प्रति तद्विषयकानुभवत्वेन कारणतायाः सर्वसम्मतत्वादित्थमुक्तम्। कारणगुणप्रक्रमजन्यः—कारणेष्ववयवादिषु तथावस्थानरूपां स्थितिमुत्पाद्य कार्ये कटादौ तां स्थितिमुत्पादयतीत्यर्थः।

अनुवाद—धर्म श्रुतिविहित क्रियाओंसे होनेवाला गुण है। अधर्म वेदविरुद्धाचरणसे होनेवाला गुण है। वेगाख्य संस्कार आद्य क्रियासे जन्य तथा द्वितीयादि क्रिया का जनक होता है। जैसे वेगसे बाण चलता है। भावनाख्य संस्कार विशिष्टज्ञानसे जन्य है। स्थितिस्थापक नामक संस्कार कारणगुणप्रक्रमजन्य है।

गुरुत्वं कारणगुणप्रक्रमजन्यम्। नैमित्तिकं द्रवत्वं जतुघृतद्रुतसुवर्णादीनामग्निसंयोगजन्यम्। स्नेहः कारणगुणप्रक्रमजन्यः। शब्दस्त्रिविधः-संयोगजः, विभागजः, शब्दजश्च, आद्यो भेरीदण्डसंयोगजन्यः, द्वितीयो वंशादिदलद्वयविभागजन्यः, तृतीयस्तु संयोगेन विभागेन च आद्ये शब्दे जनिते तेन शब्देन निमित्तवायुसहकृतेन वीचीतरङ्गन्यायेन कदम्बगोलकन्यायेन वा जन्यते। इति गुणनिरूपणम्।

व्याख्या—गुरुत्वं प्रागेव लक्षितं तच्चावयवेषूत्पद्यावयविनिजायत इति कारणगुणप्रक्रमजन्यमुच्यते। द्रवत्वं द्विविधम्—सांसिद्धिकं नैमित्तिकं च। तत्र सांसिद्धिकं जले। नैमित्तिकं जतुघृतादीनाम्, अग्निसंयोगश्च तत्र निमित्तम्। 'संयोगाद्विभागाच्छब्दाच्च शब्दनिष्पत्तिः' इति वैशेषिकसूत्रं हृदि निधाय शब्दत्रैविध्यमाह—शब्दस्त्रिविध इति। आद्यः—संयोगजः। द्वितीयः—विभागजः। वंशादिदलद्वयविभागजन्यः—वंशे पाट्यमाने दलद्वयविभागजन्या। तृतीयः—शब्दजः। स्पष्टमन्यत्।

अनुवाद—गुरुत्वनामक गुण कारणगुणप्रक्रमजन्य होता है। नैमित्तिकद्रवत्व है जो लाह, घृत तथा द्रुतसुवर्णादिमें रहता है जिसे अग्निसंयोगजन्य कहते हैं। स्नेह भी कारणगुणप्रक्रमजन्य है। शब्द तीन प्रकारके हैं—संयोगज, विभागज, शब्दज। संयोगज शब्द है—बाजे और लकड़ीके संयोगसे होनेवाला शब्द। विभागज शब्द वैसे में बांसके फाड़े जानेपर दलद्वयविभागजन्यशब्द। शब्दज शब्द वह है—

अथवा विभागसे शब्द उत्पन्न हुआ, वह शब्द वायुकी सहायतासे कदम्बमुकुल-न्यायेन वीचीतरङ्गन्यायेन वा उत्पन्न शब्द।

उत्क्षेपणावक्षेपणाकुञ्चनप्रसारणगमनानि पञ्च कर्माणि। उत्क्षेपणत्वादीनि जातयः, पृथिवीजलतेजोवायुमनोवृत्तीनि कर्माणि सर्वाण्यनित्यानि। अतीन्द्रियवृत्तीनि अतीन्द्रियाणि, प्रत्यक्षवृत्तीनि प्रत्यक्षाणि। अथ कर्मप्रक्रिया—संयोगेन नोदनाख्येनाद्यं कर्म जन्यते, द्वितीयादि वेगजन्यम्। क्रियातो विभागः, विभागात् पूर्वसंयोगनाशः, तत उत्तरदेशसंयोगोत्पत्तिः, ततः कर्मविभागयोर्नाशः। इति कर्मनिरूपणम्।

व्याख्या—संयोगभिन्नत्वे सति संयोगासमवायिकारणं कर्म, कर्मत्वजातिमद् वा कर्म। पठ्यते। ननु भ्रमणादेरप्यतिरिक्तस्य कर्मणः सत्त्वात्पठ्येत्यनुपपन्नमिति चेन्न, 'भ्रमणं रेचनं स्यन्दनोर्ध्वज्वलनमेव च। तिर्यग्गमनमप्यत्र गमनादेव लभ्यते' इत्युक्तेः। आश्रयानित्यतया चास्यानित्यत्वम्। आश्रयप्रत्यक्षेणैव च प्रत्यक्षं कर्मण इत्याह—अतीन्द्रियेति।

अनुवाद—उत्क्षेपण, अवक्षेपण, आकुञ्चन, प्रसारण, गमन ये पांच कर्मके भेद हैं। उत्क्षेपणत्व आदि जातियाँ हैं। पृथिवी, जल, तेज, वायु, मनमें रहनेवाले कर्म अनित्य हैं। अतीन्द्रिय पदार्थगत कर्म अतीन्द्रिय और प्रत्यक्षपदार्थगत कर्म प्रत्यक्ष हैं। कर्मप्रक्रिया यों मानी गई है—नोदन-नामक संयोग प्रभेदसे आद्य कर्मकी उत्पत्ति होती है, द्वितीयादि कर्म वेगसे उत्पन्न होते हैं। क्रियासे विभाग उत्पन्न होता है, विभागसे पूर्वसंयोग का नाश होता है, उससे उत्तरसंयोग की उत्पत्ति, अनन्तर कर्म और विभाग का नाश होता है।

विशेष—यहाँ जो कर्मप्रक्रिया कही गई है वह वैशेषिकों की है। आद्य कर्मसे यहाँ प्रथम प्रवृत्ति ली जाती है, उसके प्रति नोदनाख्यसंयोग कारण है।

सामान्यं त्रिविधम्—व्यापकं व्याप्यं व्याप्यव्यापकञ्च। व्यापकं सत्ता, व्याप्यं घटत्वादि, द्रव्यत्वादि व्याप्य-व्यापकम्।

'व्यक्तेरभेदस्तुल्यत्वं सङ्करोऽथानवस्थितिः।
रूपहानिरसम्बन्धो जातिबाधकसंग्रहः॥'

नित्यत्वे सत्यनेकसमवेतत्वमिति सामान्यलक्षणम्। सामान्यानि नित्यान्येव, अतीन्द्रियवृत्तीनि अतीन्द्रियाणि, प्रत्यक्षवृत्तीनि प्रत्यक्षाणि।

व्याख्या—सामान्यं निरूपयन्प्रथमं तद्भेदानाह—सामान्यमिति। व्यापकमधिकतया धर्मः व्याप्यमल्पदेशवृत्ति, व्याप्यव्यापकं च किंचिदपेक्षयाऽधिकदेशवृत्ति सदितर-

किञ्चिदपेक्षयाऽल्पदेशवृत्ति । व्यापकसामान्यं सत्ता, तस्या अधिकदेशवृत्तित्वात् (द्रव्यगुणकर्मवृत्तितया चाधिकदेशवृत्तित्वम्) व्याप्यसामान्यं घटत्वादि, तस्याल्पदेशवृत्तित्वात् । व्याप्यव्यापकसामान्यं च द्रव्यत्वादि, तस्य घटत्वापेक्षयाऽधिकदेशवृत्तित्वे सति सत्ताऽपेक्षयाऽल्पदेशवृत्तित्वात् । प्रसङ्गप्राप्ततया जातिबाधकान्याह—व्यक्तेरिति । व्यक्तेरभेदः—एकव्यक्तिकत्वम् एकाश्रयत्वमित्यर्थः, तच्चाकाशत्वादेर्जातित्वे बाधकम् , तेन चाकाशत्वं धर्म एव न जातिरिति सिद्धयति । तुल्यत्वं-तुल्यव्यक्तिवृत्तित्वं तच्च कलशत्व-घटत्वयोर्जातिभेदे बाधकम् । वस्तुतस्तु तुल्यत्वं स्वभिन्नजातिसमनियतत्वं तच्च जातिबाधकम् । सङ्करः—परस्पराहयन्ताभावसमानाधिकरणयोर्धर्मयोरेकत्र समावेशः, स च भूतत्वादेर्जातित्वे बाधकः, भूतत्वं विहाय मनसि वर्त्तमानस्य मूर्त्तत्वस्य मूर्तत्वं विहाय गगने वर्त्तमानस्य भूतत्वस्य च पृथिव्यादिचतुष्टये सत्त्वात् । अनवस्था—प्रकृताप्रतीतिकृत् । सा जातेर्जातिमत्त्वे बाधिका । रूपहानिः—निःसामान्यत्वगर्भितस्वलक्षणच्युतिः, सा विशेषस्य जातिमत्त्वे बाधिका । यद्वा रूपस्य स्वतो व्यावर्त्तकत्वस्य हानिः रूपहानिः, उदाहरणं पूर्वोक्तं विशेषरूपम् । असम्बन्धः—प्रतियोगिताऽनुयोगिताऽन्यतरसम्बन्धेन समवायाभावः, स च समवायाभावयोर्जातिमत्त्वे बाधकः । एवञ्च षड्जातिबाधका इह सङ्गृहीता बोध्याः । इयं कारिका किरणावल्याम् ।

नित्यत्व इति । अनेकसमवेतत्वं संयोगादीनामप्यस्ति अतो नित्यत्वं निवेश्यते, नित्यत्वे सति समवेतत्वं गगनपरिमाणादीनामप्यस्ति अतोऽनेकपदनिवेशः । अनेकवृत्तित्वं नित्यत्वं चात्यन्ताभावस्याप्यस्ति तेन वृत्तित्वसामान्यं विहाय समवेतत्वं निवेश्यते । आश्रयभेदेन सामान्यस्य प्रत्यक्षाप्रत्यक्षे, नित्यत्वं तु तस्य लक्षणे प्रविष्टमिति ।

अनुवाद—सामान्यके तीन भेद हैं—व्यापकसामान्य, व्याप्यसामान्य, व्याप्यव्यापकसामान्य । व्यापकसामान्य है सत्ता, व्याप्यसामान्य है घटत्वादि और व्याप्यव्यापकसामान्य है द्रव्यत्व आदि ।

व्यक्तिकी अभिन्नता, तुल्यत्व, सङ्कर, अनवस्था, रूपहानि और असम्बन्ध ये छः जातिबाधक कहे गये हैं ।

'जो नित्य होकर अनेकमें समवाय सम्बन्धसे रहें' उसे जाति कहते हैं । जाति नित्य ही होती है । अतीन्द्रियोंमें रहनेवाली जातियाँ अतीन्द्रिय और प्रत्यक्षमें रहनेवाली जातियाँ प्रत्यक्ष हुआ करती हैं ।

नित्यद्रव्यवृत्तयोऽन्त्या विशेषाः, ते च बहवो नित्या अतीन्द्रियाश्च। प्रलये परमाणूनां भेदाय ते स्वीक्रियन्ते, तेषां वैधर्म्यव्याप्यत्वात्।

व्याख्या—अन्त्याः—अन्तेऽवसाने वर्त्तन्ते ये तेऽन्त्याः, यदपेक्षया विशेषो नास्ति त इत्यर्थः। नित्यद्रव्यवृत्तयः, इति स्थानकथनं न तु लक्षणघटकम्। नित्यद्रव्याणां परस्परभेदकत्वं हि तल्लक्षणं बोध्यम्। प्रलय इति। घटादीनां द्व्यणुकपर्यन्तानां तत्तदवयवभेदात् परस्परं भेदः, प्रलयकाले तु सर्वेषां पदार्थानामवयवा अपि नश्यन्ति, तदा परमाणूनां भेदसाधको विशेष एव। अथ मास्तु परमाणुषु भेदः, किं तत इति चेन्न, तदभावे भिन्नपदार्थानुद्भवप्रसङ्गात्। तेषां विशेषाणाम्। वैधर्म्यव्याप्यत्वात्—व्याप्यम् अल्पदेशवृत्ति, वैधर्म्यव्याप्या विशेषाः, व्याप्यविशेषाणां सद्भावे तद्व्यापकवैधर्म्यस्यावश्यं स्वीकर्त्तव्यत्वात्।

अनुवाद—**नित्य द्रव्योंमें रहनेवाले अन्त्य विशेष हैं। वे बहुत, नित्य तथा अतीन्द्रिय हैं। प्रलयकालमें परमाणुओंमें भेद करनेके लिये उन्हें मानना पड़ता है, क्योंकि विशेष वैधर्म्यव्याप्य होते हैं।**

विशेष—विशेषपदार्थ वैशेषिक दर्शनका सबसे मुख्य पदार्थ है। प्रायः इसी'के माननेके कारण इस दर्शनका नाम वैशेषिक पड़ा है। घटादि पदार्थोंका सजातीय द्वितीयसे भेद अवयव भेदसे माना जाता है, वह अवयव क्यों भिन्न हैं? इसका उत्तर यह दिया जाता है कि उनके भी अवयव भिन्न है। इस तरह परमाणुपर पहुँचनेपर परमाणु क्यों भिन्न है यह प्रश्न होता है, वहाँ अवयव भेदसे यह उत्तर नहीं हो सकता है, क्योंकि परमाणु निरवयव है, अतः वहाँ यही उत्तर दिया जाता है कि 'विशेषात्'। एक पार्थिवपरमाणु दूसरे पार्थिवपरमाणुसे 'विशेष'के कारण ही भिन्न हैं। विशेष क्यों भिन्न है? इसका उत्तर यही है कि वह स्वतोव्यावृत्त है। यही उनका भेद है।

स्वसम्बन्धिभिन्नो नित्यः सम्बन्धः समवायः, तेन स्वरूपसम्बन्धस्य संयोगस्य च निरासः। 'इह घटे घटत्वम्' इति प्रतीतिस्तत्र प्रमाणम्। नैयायिकमते समवायः प्रत्यक्षः, स चैको नित्यश्च।

व्याख्या—स्वरूपस्य स्वसम्बन्धिरूपतया तन्निरासाय स्वसम्बन्धिभिन्न इति, संयोगेऽतिव्याप्तिवारणाय नित्यइति, आकाशादावतिव्याप्तिवारणाय सम्बन्ध इति। 'घटे घटत्वम्' इति प्रतीतिरेवात्र समवाये प्रमाणम्, तस्या विशिष्टबुद्धित्वात्तत्र सम्बन्धस्यावश्यम्भावित्वात् तस्य चात्र समवायस्यैव सम्भवाज्जातिजातिमतोस्तन्नियमात्। स च—समवायश्च।

अनुवाद—जो सम्बन्धियोंसे भिन्न हो, नित्य हो, सम्बन्धरूप हो उसे समवाय कहते हैं। इस लक्षणमें प्रथम विशेषणसे स्वरूपसम्बन्ध की, नित्य कहनेसे संयोग की और सम्बन्ध कहनेसे आकाश की व्यावृत्ति हुई। 'इस घटमें घटत्व है' यह प्रतीति ही समवायमें प्रमाण है। नैयायिकोंके मतमें समवाय प्रत्यक्ष है, समवाय एक होता है और नित्य होता है।

ननु अन्यान्यपि अन्धकारसुवर्णादीनि द्रव्याणि सन्ति; आलस्यादयो गुणा अपि सन्ति, कथं नवैवेत्यादि ? मैवम्, अन्धकारो न द्रव्यं किन्तु तेजोऽभावः, सुवर्णं तेज एव, आलस्यं कृत्यभाव एव। एवमन्यदपि बोध्यम्।

व्याख्या—अन्यानि स्वीकृतेभ्यो नवद्रव्येभ्योऽन्यानि। नीलं तमश्चलतीति प्रतीतेर्नीलरूपाश्रयत्वाच्चलनक्रियाऽऽश्रयत्वाच्च तमसो द्रव्यत्वं प्रतीयते, तमसः कल्पितपदार्थेष्वन्तर्भावस्तु न सम्भवी, आकाशादिपंचकस्य वायोश्च नीलरूपत्वाऽजलतेजसोः शीतोष्णस्पर्शवत्त्वात्पृथिव्याश्च गन्धवत्त्वात्। तदेवमन्धकारस्यातिरिक्तद्रव्यत्वं साध्यते। एवमालस्यस्यापि गुणत्वं साध्यम्, अन्धकारो न द्रव्यमिति। तथा चोक्तम्—तमो हि न रूपि द्रव्यं तस्यालोकासहकृतचक्षुर्ग्राह्यत्वात्, आलोकाभाववत्। तस्मात् प्रौढप्रकाशकतेजःसामान्याभावस्तमः। नीलरूपवत्त्वचलनयोश्च तत्र भ्रम एव। सुवर्णस्य द्रव्यत्वं तु तेजस्त्वसिद्धया सिद्धमेव। ननु सुवर्णस्य तैजसत्वे किं मानम् ? इति चेन्न, सुवर्णं तैजसम्, असति प्रतिबन्धकेऽत्यन्तानलसंयोगेऽप्यनुच्छिद्यमानद्रवत्वात्, यन्नैवं तन्नैवं यथा पृथिवीति। नवीनास्तु सुवर्णं पार्थिवमेवेत्याहुः।

अनुवाद—शङ्का—और भी अन्धकार सुवर्ण आदि द्रव्य जब हैं तथा आलस्य आदि गुण भी हैं तब 'नवैव द्रव्याणि' 'चतुर्विंशतिर्गुणाः' इस तरहका नियम कैसे होगा ?

उत्तर—अन्धकार अतिरिक्त द्रव्य नहीं है यह तो तेजका अभावस्वरूप है। सुवर्ण तो तेजोरूप द्रव्य माना जाता है। चेष्टाका अभाव ही आलस्य है। इसी तरह और जानना चाहिये।

अभावो द्विविधः-संसर्गाभावोऽन्योन्याभावश्च। आद्यस्त्रिविधः-प्रागभावः, ध्वंसः, अत्यन्ताभावश्च। प्रागभावो विनाशी अजन्यः। ध्वंसो जन्यः अविनाशी च। अत्यन्ताभावान्योन्याभावौ त्वजन्यावविनाशिनौ च। योग्यानुपलब्ध्याऽभावः प्रत्यक्षः, अन्यत्र त्वतीन्द्रियः।

व्याख्या—अभावत्वमखण्डोपाधिर्धर्मविशेष इति केचित्। भावभिन्नत्वमभाव-

त्वमिति परे। संसर्गाभावक्षणं तु–अन्योन्याभावभिन्नाभावत्वम्। अन्योन्याभावत्वं तु तादात्म्यसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावत्वम्। प्रागभावः–उत्पत्तेः पूर्वं कार्यस्य योऽभावः स प्रागभावः। उत्पत्त्यनन्तरं कार्यस्य योऽभावः स ध्वंसः। अत्यन्ताभावस्तु–तादात्म्यसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकोऽभावः। यथाऽऽकाशे सरसः।

एषु प्रध्वंसो दृश्यत एव, अन्योन्याभावो भेदरूपतया प्रत्यक्ष एव, अत्यन्तासतामर्थानामत्यन्ताभावोऽपि स्वीकारयोग्यः, प्रागभावः किमर्थं स्वीक्रियते इति शङ्कायामाह–'अयं घटः स्वोत्पत्तिक्षणावृत्तिकारणजन्यः, स्वोत्पत्तिद्वितीयक्षणानुत्पन्नत्वात्' इत्यनुमानमेव प्रमाणमिति। योग्यानुपलब्धिः–यस्य वस्तुनः प्रत्यक्षयोग्यता तदभावः प्रत्यक्षः। योग्यस्य प्रत्यक्षार्हस्य अनुपलब्धिः अदृश्यता।

अनुवाद—अभाव दो प्रकारका है—संसर्गाभाव, अन्योन्याभाव। इनमें पहला संसर्गाभाव तीन प्रकारका है—प्रागभाव, ध्वंस और अत्यन्ताभाव। प्रागभाव विनाशी तथा अजन्य होता है। ध्वंस जन्य तथा अविनाशी होता है। अत्यन्ताभाव और अन्योन्याभाव अजन्य तथा अविनाशी होते हैं। योग्यानुपलब्धिसे अभाव प्रत्यक्ष होता है। और जगह अभाव अतीन्द्रिय है।

अथ प्रमा कथ्यते, सा चतुर्विधा–प्रत्यक्षानुमित्युपमितिशाब्दभेदात्। तत्करणानि प्रमाणानि चत्वारि–प्रत्यक्षानुमानोपमानशब्दभेदात्। तत्र प्रत्यक्षं द्विविधं–निर्विकल्पकम्, सविकल्पकञ्च। प्रत्यक्षकरणानि षडिन्द्रियाणि, घ्राणरसनचक्षुस्त्वक्श्रोत्रमनांसि। एतानि सन्निकर्षसहितानि प्रत्यक्षं जनयन्ति।

व्याख्या—'यथार्थानुभवः प्रमा' इति प्रमालक्षणमन्यत्रोक्तम्। तत्करणानि–प्रमाकरणानि। तत्र प्रमाणेषु चतुर्षु प्रत्यक्षम्–इन्द्रियार्थसन्निकर्षजन्यं ज्ञानम्। तद्भेदावाह–निर्विकल्पकम् इति। निष्प्रकारकं ज्ञानं निर्विकल्पकम्, विशेषणविशेष्यसम्बन्धानवगाहिज्ञानं निर्विकल्पकमित्याशयः। तच्च 'नीलं वस्त्रम्' इति ज्ञानात् पूर्वभावि 'नीलम्' इति ज्ञानम्। अस्य न प्रत्यक्षं किन्तु सप्रकारकज्ञानानुमेयमिदम्। सप्रकारकं ज्ञानं सविकल्पकम्। यथा नीलं वस्त्रम्। प्रत्यक्षकरणानि षट्, अतः प्रत्यक्षमपि षड्विधम्, घ्राणज–रासन–चाक्षुष–त्वाच–श्रोत्र–मानस–भेदात्। एतानि घ्राणादीनि। सन्निकर्षः–इन्द्रियार्थयोः सम्बन्धः। स चात्र षड्विधः–संयोगः, संयुक्तसमवायः, संयुक्तसमवेतसमवायः, समवायः, समवेतसमवायः, विशेष्यविशेषणभावश्चेति। उदाहरणान्येषां तर्कसंग्रहमूले द्रष्टव्यानि।

अनुवाद—अब प्रमाका निरूपण करेंगे। प्रमाके चार भेद हैं—प्रत्यक्ष, अनुमिति, उपमिति, शाब्द। इन प्रमाओंके कारण भी चार हैं—प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द। प्रत्यक्ष दो प्रकारका है—निर्विकल्पक और सविकल्पक। प्रत्यक्षके कारण इन्द्रिय छः हैं—नाक, रसना, चक्षु, त्वक्, श्रोत्र, मन। यह छः इन्द्रिय सन्निकर्षके होनेपर प्रत्यक्षको उत्पन्न करते हैं।

विशेष—प्राचीन परम्परा के अनुसार निर्विकल्पकको प्रमा माना गया है। कन्दलीमें श्रीधरने ऐसा स्वीकार किया है। न्यायसिद्धान्तमुक्तावलीमे 'भ्रमभिन्नं ज्ञानं प्रमा' कहकर इसे प्रमा कहा है। किन्तु गङ्गेशोपाध्यायके मतानुसार यह भ्रम प्रमा विलक्षण है। 'न प्रमा नापि भ्रमः स्यान्निर्विकल्पकम्। प्रकारतादिशून्यं हि सम्बन्धानवगाहि तत्'। अर्थात् प्रमात्व और अप्रमात्व दोनों प्रकारतादिघटित ज्ञानमें रहते हैं और निर्विकल्पक ज्ञान प्रकारतादिसे शून्य होता है। इसलिये निर्विकल्पक ज्ञानको न प्रमा कहा जाता है न अप्रमा। वह दोनोंसे विलक्षण है।

सन्निकर्षश्च लौकिकोऽलौकिकश्च। अलौकिकस्त्रिविधः—ज्ञानलक्षणा, सामान्यलक्षणा, योगजश्च। लौकिकः षड्विधः—संयोगः, संयुक्तसमवायः, संयुक्तसमवेतसमवायः, समवायः, समवेतसमवायः, विशेषणता चेति। संयोगेन द्रव्यग्रहः, संयुक्तसमवायेन शब्दान्यगुणकर्मद्रव्यवृत्तिजातीनां प्रत्यक्षम्; संयुक्तसमवेतसमवायेन शब्दमात्रवृत्तिजातीतरगुणवृत्तिकर्मवृत्तिजातीनां प्रत्यक्षम्, समवायेन शब्दस्य, समवेतसमवायेन शब्दवृत्तिजातीनां, विशेषणतयाऽभावस्य समवायस्य च प्रत्यक्षम्।

व्याख्या—'इन्द्रियार्थसन्निकर्षजन्यं ज्ञानं प्रत्यक्षम्' इति प्रागुक्तं तत्र प्रक्रान्तं सन्निकर्षं विभजते—सन्निकर्षश्चेति, लौकिकः सन्निकर्षः षड्विधः, अलौकिकस्त्रिविधस्तत्र प्रथममलौकिकसन्निकर्षस्य भेदत्रयमाह—अलौकिक इति। अथ लौकिकसन्निकर्षोदाहरणान्याह—संयोगेनेति। संयोगेत्यस्य विषयेन्द्रियसंयोगेनेत्यर्थः। शब्दान्यो गुण-कर्म, द्रव्यवृत्तिजातयश्च संयुक्तसमवायेन ज्ञायन्ते। शब्दमात्रवृत्तिजातीतरो धर्मः, गुणवृत्तिजातिः, कर्मवृत्तिजातिश्च संयुक्तसमवेतसमवायेन गृह्यन्ते।

अनुवाद—सन्निकर्ष दो प्रकार के हैं—लौकिक और अलौकिक। अलौकिक सन्निकर्ष तीन प्रकार के हैं—ज्ञानलक्षणा, सामान्यलक्षणा, तथा योगज। लौकिकसन्निकर्ष छः प्रकार के हैं—संयोग, संयुक्तसमवाय, संयुक्तसमवेतसमवाय, समवाय, समवेतसमवाय और विशेष्यविशेषणभाव। संयोगसन्निकर्ष से द्रव्य का प्रत्यक्ष होता है। संयुक्तसमवाय से शब्दातिरिक्त गुण तथा कर्म और द्रव्यगतजातियों का

प्रत्यक्ष होता है। संयुक्तसमवेतसमवाय से शब्दमात्रवृत्तिजाति से भिन्न गुणकर्मवृत्तिजातियों का प्रत्यक्ष होता है। समवाय से शब्द का, समवेतसमवाय से शब्दत्व का और विशेषणता-सन्निकर्षसे अभाव तथा समवायका प्रत्यक्ष होता है।

अलौकिकः स यथा—ज्ञानलक्षणया 'सुरभिचन्दनम्' इति ज्ञानम्। सामान्यलक्षणया घटत्वेन रूपेण यावद्घटज्ञानम्। योगजधर्मेण योगिनां सर्वज्ञानम्।

व्याख्या—ज्ञानलक्षणप्रत्यासत्त्या सुरभि चन्दनमिति ज्ञानम्, तत्र चन्दनस्य दूरस्थतया तत्सौरभ्यं ज्ञानलक्षणप्रत्यासत्त्यैव भवति। सामान्यलक्षणप्रत्यासत्त्या एकत्र घटज्ञाने जाते घटत्वेन रूपेण सकलघटज्ञानं जायते। योगजधर्मेण भूतभविष्यदर्थज्ञानं योगिनाम्।

अनुवाद—अलौकिक प्रत्यक्षका उदाहरण—ज्ञानलक्षणासे-'सुरभिचन्दन' यह ज्ञान। सामान्यलक्षणासे-घटत्वेन रूपेण यावद्घटज्ञान। योगजधर्मसे-योगियोंका सर्वविषयकज्ञान।

विशेष—'सुरभिचन्दन' इस ज्ञानके स्थलमें जहाँ दूरसे कोई चन्दन लिये जाता है तो नाकका सम्बन्ध चन्दनसे नहीं होता क्योंकि वह दूर है, केवल आंखसे चन्दन दीखता है फिर भी यह चन्दन सुगन्धित है ऐसा ज्ञान होता है। वहाँ सुगन्धका स्मरणात्मकज्ञान सुगन्धविशिष्ट चन्दनके प्रत्यक्षमें असाधारणकारण होता है। यही ज्ञानलक्षणा कहलाती है।

किसी एक घटको देखकर अतीत तथा भविष्य दूरवर्त्ती तथा समीप सभी घटोंको जो 'सर्वे घटाः' इस प्रकार लोग प्रत्यक्ष करते हैं वही सामान्यलक्षणा प्रत्यासत्ति है। घट प्रत्यक्षमें घटत्वका उस घटमें ज्ञान होता है वही घटत्व अखिल घटमें रहता है अतः घटत्व-सामान्यका जब ज्ञान होता है तो वही ज्ञान असाधारणकारण बनकर स्वविषय घटत्वके आश्रयीभूत समग्र घटका प्रत्यक्ष करा देता है। यही प्रकार है।

योगज प्रत्यक्ष वह है जो योगियोंको अबाधितरूपसे प्रत्यक्ष होता है। वहाँपर विशुद्ध अन्तःकरणगत संस्कार ही असाधारण कारण होता है।

तत्र निर्विकल्पकं विशेष्यप्रकारादिसहितं वस्तुस्वरूपमात्रज्ञानम्। सविकल्पकं सप्रकारकम्।

भासमानवैशिष्ट्यप्रतियोगित्वं प्रकारत्वम्। यथा 'अयं घटः' इत्यत्र अयं विशेष्यः, घटत्वं प्रकारः, भासमानवैशिष्ट्यं तयोः समवायः, तस्य प्रतियोगि घटत्वम्। सविकल्पकमेव विशिष्टवैशिष्ट्यज्ञानम्। यथा 'अयं दण्डी' इत्यत्र दण्डत्वविशिष्टस्य वैशिष्ट्यं पुरुषे भासते।

अथ प्रक्रिया—आदाविन्द्रियसन्निकर्षात् 'घटघटत्वे' इति निर्विकल्पकम्, ततः 'अयं घट' इति विशिष्टज्ञानम्।

व्याख्या—यत्र ज्ञाने किमपि वस्तु विशेष्यतया विशेषणतया सम्बन्धरूपेण वा न भासते तन्निर्विकल्पकम्, सर्वमेकत्र वस्तुस्वरूपज्ञाने एव समाविशतीत्यर्थः। इदं ज्ञानं सविकल्पकज्ञानेनानुमीयते।

सप्रकारकम्—विशेषणविशेष्यभावावगाहिज्ञानमित्यर्थः।

दण्डत्वविशिष्टस्य—दण्डस्य। वैशिष्ट्यं नाम सम्बन्धः।

अनुवाद—विशेष्य तथा प्रकारादिसे युक्त सामान्यतः जो वस्तुस्वरूपमात्रका ज्ञान होता है वह निर्विकल्पक ज्ञान है। सप्रकारक ज्ञानको सविकल्पकज्ञान कहते हैं। प्रतीत होनेवाले वैशिष्ट्यके प्रतियोगीको प्रकार कहा जाता है। यथा—'अयं घटः' इस ज्ञानमें 'अयम्' यह विशेष्य और 'घटत्व' प्रकार है, भासमान वैशिष्ट्य हुआ, इदमर्थ घट और घटत्वका समवायसम्बन्ध, उस उस सम्बन्धका प्रतियोगी हुआ घटत्व। (उसे प्रकार कहते ही हैं)

सविकल्पकको ही विशिष्टवैशिष्ट्यज्ञान कहते हैं। उसे 'अयं दण्डी' यह ज्ञान। यहाँ दण्डत्वविशिष्ट-दण्ड-का वैशिष्ट्य-सम्बन्ध पुरुषमें भासित होता है। इसकी प्रक्रिया यह है—प्रथमतः इन्द्रियार्थ सन्निकर्ष होनेसे-'घटघटत्वे' यह अलग निर्विकल्पकज्ञान होता है, तदनन्तर 'अयं घटः' यह विशेषणविशेष्यभावग्राही ज्ञान होता है, वही सविकल्पक है।

तत्र परतः प्रामाण्यग्रह इति नैयायिकाः। यथाऽऽदौ 'घटः' इति व्यवसायः, ततो 'घटमहं जानामी'त्यनुव्यवसायः, ततः प्रामाण्याप्रामाण्ये इति कोटिद्वयस्मरणम्, अथ चतुर्थे इदं ज्ञानं प्रमा? न वा? इति प्रामाण्यसंशयः, ततो विशेषदर्शनानन्तरं प्रामाण्यग्रहः—इदं ज्ञानं प्रमा, समर्थप्रवृत्तिजनकत्वात्, ज्ञानान्तरवत्।

व्याख्या—एवं ज्ञानभेदानभिधाय तत्प्रामाण्यं स्वतः परतो वेति द्वैधे परतः प्रामाण्यमिति नैयायिकमतम्, ते हि ज्ञानस्य प्रामाण्यं परतो जायमानादनुमानादङ्गीकुर्वन्ति। तत्प्रकारश्च मूलोक्तो वेद्यः। व्यवसायः—इन्द्रियार्थसन्निकर्षजन्यो बोधः। प्रामाण्याप्रामाण्ये इति कोटिद्वयस्मरणम्—इदं ज्ञानं प्रमाऽप्रमा वेति संशये बीजभूतं प्रामाण्याप्रामाण्ययोः समस्कन्धभावेनोपस्थानम्। समर्थप्रवृत्तिः—यथोक्तवस्तूपलब्धिक्षमप्रवृत्तिः।

अनुवाद—प्रामाण्य परतः होता है यह नैयायिकोंका मत है। यथा—पहले

'घटः' ऐसा सामान्य ज्ञान होता है, अनन्तर 'घटको मैं जानता हूँ' ऐसा अनुव्यवसाय (ज्ञानजन्य ज्ञान) होता है। अनन्तर प्रामाण्य और अप्रामाण्य ऐसा कोटिद्वय उदित होता है। इसके बाद चतुर्थ क्षणमें 'यह ज्ञान प्रमा है कि अप्रमा' यह संशय होता है। इसके बाद विशेष दर्शनसे प्रामाण्यग्रह होता है—यथा—यह ज्ञान प्रमा है, क्योंकि यह समर्थप्रवृत्तिजनक है, जैसे दूसरे ज्ञान।

स्वतः प्रामाण्यग्रह इति त्रयो मीमांसकाः, तत्र गुरुमते—'अयं घटः' इति ज्ञानं विषयम्, आत्मानम्, ज्ञानप्रामाण्यं च गृह्णाति।

मुरारिमिश्रमते 'अयं घटः' इति ज्ञानानन्तरं घटमहं जानामीत्यनुव्यवसायः, तेनैव प्रामाण्यग्रहः।

भट्टमते—ज्ञानस्यातीन्द्रियत्वेन ज्ञानमनुमेयं यथा तथा तद्वृत्तिप्रामाण्यञ्च, तथाहि घट इति ज्ञानानन्तरं घटे ज्ञातता उत्पद्यते, ततो मया ज्ञातो घट इति ज्ञाततायाप्रत्यक्षम्, ततो व्याप्यादिप्रत्यक्षानन्तरं ज्ञानानुमानम्। यथा—'अहं घटत्वप्रकारकज्ञानवान् घटत्वप्रकारकज्ञाततावत्त्वात्' तावतैव तस्य धर्मधर्मिविषयकत्वेन प्रामाण्यानुमानम्। इति प्रत्यक्षनिरूपणम्।

व्याख्या—ज्ञानं स्वतः प्रमाणमिति मीमांसकानां सर्वेषां मतम्, तत्रैवान्तरविशेषमभिधास्यन्नाभाकरं मतान्याह गुरुमत इति। गुरवो हि 'अयं घटः' इति ज्ञानं सहैव विषयं घटम्, आत्मानं स्वं ज्ञानमित्यर्थः, ज्ञानप्रामाण्यं च विषयीकरोति। अत्र विषयविषयिप्रामाण्यानामेकदैव ग्रहणमिति तात्पर्यम्। मुरारिमिश्रमतेऽनुव्यवसायेन ज्ञानप्रामाण्यमिति स्थितिः। भट्टास्तु—ज्ञानं न प्रत्यक्षं तस्यातीन्द्रियत्वात्, किन्तु तदनुमेयम्, तथैव ज्ञानगतं प्रामाण्यमप्यनुमेयमेव। व्याप्या = ज्ञातता। अन्यन्मूले स्पष्टम्।

अनुवाद—ज्ञानमें स्वतःप्रामाण्य होता है ऐसा तीनों मीमांसकमतोंमें कहा गया है। प्रभाकरमतमें—'अयं घटः' यह ज्ञान-विषयभूतघट, ज्ञान तथा ज्ञानप्रामाण्य इन तीनोंका ग्रहण करता है।

मुरारिमिश्रके मतमें—'अयं घटः' इस ज्ञानके बाद 'घटमहं जानामि' यह अनुव्यवसाय होता है, उसीसे प्रामाण्यग्रह होता है।

भट्टमतमें—ज्ञान अतीन्द्रिय होनेके कारण अनुमेय है, उसी तरह उसका प्रामाण्य भी अनुमेय है। 'घटः' इस ज्ञानके बाद घटमें 'ज्ञातता' उत्पन्न होती है, ततः 'मया घटो ज्ञातः' इस तरह ज्ञाततांका प्रत्यक्ष होता है, अनन्तर व्याप्यस्वरूप

ज्ञातताके प्रत्यक्ष होनेसे ज्ञानका अनुमान होगा। यथा—मैं घटत्वप्रकारकज्ञानवान् हूँ, क्योंकि घटत्वप्रकारज्ञाततावान् हूँ। इसी अनुमान से धर्म-प्रामाण्य तथा धर्मी-ज्ञान दोनोंका अनुमान होता है।

प्रत्यक्षनिरूपण समाप्त

अनुमितिकरणमनुमानम्। अनुमितित्वं जातिः। व्यापारवत् कारणं करणम्। व्यापारश्च तज्जन्यत्वे सति तज्जन्यजनकः। हेतुज्ञानादिकरणम्। परामर्शो व्यापारः। परामर्शश्च व्याप्तिविशिष्टपक्षधर्मताज्ञानम्। यथा—'वह्निव्याप्यधूमवानयम्' इति। आदौ महानसादौ धूमे वह्निसामानाधिकरण्यग्रहे सति 'धूमो वह्निव्याप्यः' इत्यनुभवो जायते, ततः कालान्तरे पर्वते धूमे दृष्टे सति व्याप्तिस्मरणं ततश्च व्याप्तावाशष्टवाशष्टयज्ञाः—'वह्निव्याप्यधूमवानयम्' इति तृतीयलिङ्गपरामर्शः। तेन 'पर्वतो वह्निमान्' इत्यनुमितिर्जायते।

व्याख्या—अनुमितौ अनुमित्यात्मके ज्ञाने करणं साधनम् अनुमानम्, तदाख्यम् प्रमाणम्। सकलानुमितिनिष्ठमेकमनुमितित्वं जातिः। व्यापारवत्त्वे सति कारणत्वं करणत्वम्। व्यापारलक्षणमाह—तज्जन्यत्व इति। समन्वयः परामर्शे यथा—परामर्शो हेतुज्ञानजन्यः हेतुज्ञानजन्यानुमितिजनकश्चेति स व्यापारः। व्याप्तिविशिष्टेति। व्याप्तिविषयकं यत् पक्षधर्मताज्ञानं स परामर्श इत्यर्थः। पक्षधर्मता=पक्षे पर्वतादौ वृत्तित्वम्। परामर्शोदाहरणं यथा—'वह्निव्याप्यधूमवानयम्' इति। एवं चानुमितिः—परामर्शजन्यं ज्ञानम्, परामर्शश्च व्याप्तिविशिष्टपक्षधर्मताज्ञानमिति फलितम्। वह्निसामानाधिकरण्यम्—वह्न्यधिकरणवृत्तित्वं सहचार इत्यर्थः। धूमो वह्निव्याप्यः—धूमो वह्न्यभाववदवृत्तिः। व्याप्तिस्मरणम्—यत्र यत्र धूमः तत्र तत्र वह्निरिति साहचर्यनियमस्मरणम्। व्याप्तिविशिष्टवैशिष्ट्यज्ञानम्—व्याप्तिविशिष्टस्य वह्निव्याप्यस्य धूमस्य सम्बन्धावगमः, तदाकारश्च वह्निव्याप्यधूमवानयमिति। तृतीयलिङ्गपरामर्श—तृतीयं लिङ्गोपहितं ज्ञानम्। लिङ्गमत्र धूमः, तस्य प्रथमं ज्ञानं महानसादौ, ततो व्याप्तिस्मरणे द्वितीयं तज्ज्ञानम्, ततो वह्निव्याप्यधूमवानयम् इति ज्ञाने तृतीयवारं तत्प्रवेश इति तृतीयलिङ्गपरामर्शोऽयम्। तेन परामर्शेन।

अनुवाद—अनुमितिके कारणको अनुमान प्रमाण कहते हैं। अनुमितित्व जाति है। व्यापारवान् कारणको करण कहा जाता है। व्यापार उसे कहा जाता है जो उससे

जन्य होकर उससे जन्यका जनक हो। (अनुमानमें) परामर्श व्यापार है। परामर्शका लक्षण है—व्याप्तिविशिष्ट पक्षधर्मताज्ञानत्व। जैसे—'वह्निव्याप्यधूमवानयम्' यह ज्ञान। प्रथमतः महानस आदिमें धूममें वह्निसामानाधिकरण्यका ज्ञान होता है, उससे 'धूमो वह्निव्याप्यः' यह अनुभव होता है। पीछे दूसरे समय पर्वतपर धूमके दीखनेसे व्याप्तिस्मरण होता है, उसके बाद व्याप्तिविशिष्ट धूमका वैशिष्ट्य-सम्बन्ध पक्षमें गृहीत होता है, यथा—'वह्निव्याप्यधूमवानयम्'। इसे तृतीय-लिङ्गपरामर्श कहते हैं। इसी परामर्शसे-'पर्वतो वह्निमान्' यह अनुमिति होती है।

विशेष—तर्कभाषाका इतना अंश यहाँ ध्यातव्य है—'ननु कथं प्रथमं महानसे यद्धूमज्ञानं तन्नाग्निमनुमापयति? सत्यं, व्याप्तेरगृहीतत्वात्, गृहीतायामेव व्याप्तावनुमित्युदयात्। अथ व्याप्तिनिश्चयोत्तरकालं महानस एवाग्निरनुमीयताम्? मैवम्, अग्नेर्दृष्टत्वेन सन्देहस्यानुदयात्। सन्दिग्धार्थोऽनुमीयते, यथोक्तंभाष्यकृता-'नानुपलब्धे न निर्णीतेऽर्थे न्यायः प्रवर्त्तते, किन्तु सन्दिग्धे'। अथ पर्वतगतमात्रस्य पुंसो यद्धूमज्ञानं तत्कथं नाग्निमनुमापयति? अस्ति चात्राग्निसन्देहः, साधकबाधकप्रमाणाभावेन संशयस्य न्यायप्राप्तत्वात्, सत्यम्, अगृहीतव्याप्तेरिव गृहीतविस्मृतव्याप्तेरपि पुंसोऽनुमानानुदयेन व्याप्तिस्मृतेरपि अनुमितिहेतुत्वात्। धूमदर्शनोद्बुद्धसंस्कारो व्याप्तिं स्मरति, 'यो यो धूमवान् स सोऽग्निमान्' यथा महानसमिति। तेन धूमदर्शने जाते व्याप्तिस्मृतौ भूतायां यद्धूमज्ञानं तत् तृतीयं 'धूमवांश्चायम्' इति। तदेवाग्निमनुमापयति नान्यत्। तदेवानुमानम्।

व्याप्तिश्च हेतुसमानाधिकरणात्यन्ताभावाप्रतियोगिसाध्यसामानाधिकरण्यम्। न च 'अयं संयोगवान् द्रव्यत्वात्' इत्यत्राव्याप्तिः, प्रतियोगिव्यधिकरणहेतुसमानाधिकरणात्यन्ताभावप्रतियोगि-साध्यसामानाधिकरण्यमित्यर्थात्। पक्षता च सिषाधयिषाविरहसहकृतसिद्ध्यभावः।

व्याख्या—'साहचर्यनियमो व्याप्तिः' इति मूलभूतं लक्षणम्, तत्र साहचर्यं सामानाधिकरण्यमेव विवक्षितं तदभिप्रायेण परिष्करोति हेतुसमानाधिकरणेति। 'वह्निमान् धूमात्' इत्यत्र हेतुभूतधूमसमानाधिकरणो योऽत्यन्ताभावः स घटात्यन्ताभावस्तदप्रतियोगी वह्निस्तत्सामानाधिकरण्यं धूमेऽस्तीति लक्षणं समन्वितम्। इदं सद्धेतूदाहरणम्। असद्धेतौ 'धूमवान् वह्नेः' इत्यादौ तु धूमसामान्याभावस्यापि (अयोगोलके) हेतुसमानाधिकरणतया नातिव्याप्तिः। न चैवमपि 'संयोगवान् द्रव्यत्वात्' इत्यत्र द्रव्ये घटादावुत्पत्तिकालावच्छेदेन संयोगसामान्याभावस्य सत्त्वादव्याप्तिरिति वाच्यम्, प्रतियोगिवैयधिकरण्यस्यापि लक्षणे निवेश्यमानत्वात्।

सिषाधयिषा—साधनेच्छा, अनुमित्सेत्यर्थः, तद्विरहविशिष्टा तद्रहिता या सिद्धिस्तदभावः पक्षतेति शब्दार्थः। एतेन सिद्धेः प्रतिबन्धकत्वमुक्तम्।

अनुवाद—हेतुसमानाधिकरण जो अत्यन्ताभाव तदप्रतियोगी जो साध्य तत्सामानाधिकरण्य ही व्याप्ति है। इस लक्षणमें 'संयोगवान् द्रव्यत्वात्' इस स्थलमें अव्याप्ति होगी, उसके वारणार्थ 'प्रतियोगिव्यधिकरण' यह निवेश किया जाता है। सिद्धि करने की इच्छा सिषाधयिषा कही जाती है, उसके अभावके साथ रहनेवाली सिद्धिके अभावको पक्षता कहते हैं।

अनुमानं द्विविधं—स्वार्थं परार्थञ्च। तत्र परार्थं पञ्चावयवसाध्यम्। अवयवाश्च प्रतिज्ञाहेतूदाहरणोपनयनिगमनानि। यथा—(१) अयं वह्निमान्, (२) धूमात्, (३) यो यो धूमवान् स स वह्निमान् यथा महानसम्, (४) वह्निव्याप्यधूमवानयम्, (५) तस्मात् वह्निमान्, इति।

स्वार्थञ्च स्वीयव्याप्त्यादिज्ञानसाध्यम्, न तत्र परप्रतिपत्त्यर्थमेवमाह शब्दप्रयोगम्।

व्याख्या—परार्थानुमानस्य परबोधनप्रयोजनकतया पंचावयवसाध्यत्वम्। तेऽवयवा इत्यत्राह—प्रतिज्ञेति। साध्यवत्तया पक्षवचनं प्रतिज्ञा। पंचम्यन्तं लिङ्गप्रतिपादकं वचनं हेतुः। व्याप्तिप्रतिपादकं वचनमुदाहरणम्। व्याप्तिविशिष्टलिङ्गप्रतिपादकं वचनमुपनयः। हेतुसाध्यवत्तया पक्षप्रतिपादकं वचनं निगमनम्। तत्र—पक्षज्ञानं प्रतिज्ञाप्रयोजनम्। लिङ्गज्ञानं हेतुप्रयोजनम्। व्याप्तिज्ञानमुदाहरणप्रयोजनम्। पक्षधर्मज्ञानमुपनयप्रयोजनम्। अबाधितत्वादिकं निगमनप्रयोजनम्। परार्थस्यानुमानस्य स्वरूपमुक्त्वा स्वार्थानुमानमाह—स्वार्थञ्चेति। स्वानुमितिहेतुः स्वार्थानुमानम्। स्वयमेव भूयो दर्शनेन यत्र धूमस्तत्राग्निरिति महानसादौ व्याप्तिं गृहीत्वा पर्वतसमीपं गतस्तद्गते चाग्नौ सन्दिहानः पर्वते धूमं पश्यन् व्याप्तिं स्मरति—यत्र धूमस्तत्राग्निरिति। तदनन्तरं 'वह्निव्याप्यधूमवानयं पर्वतः' इति ज्ञानमुत्पद्यते, अयमेव लिङ्गपरामर्शः। तस्मात् 'पर्वतो वह्निमान्' इति ज्ञानमनुमितिरुत्पद्यते तदेतत् स्वार्थानुमानम्। स्वार्थानुमाने परप्रतिपत्तिर्नेष्टाऽतः पंचावयववाक्यप्रयोगो न भवतीति भावः।

अनुवाद—अनुमानके दो भेद हैं—१ स्वार्थानुमान, २ परार्थानुमान। उसमें परार्थानुमान पञ्चावयवसाध्य होता है। पञ्चावयव यह हैं, १ प्रतिज्ञा, २ हेतु, ३ उदाहरण, ४ उपनय, ५ निगमन। पञ्चावयववाक्यका उदाहरण देता है, यथा—१ यह वह्निमान् है, २ धूम है इसलिये, ३ जो धूमवान् होगा वह वह्निमान् होगा जैसे महानस, ४ यह वह्निव्याप्यधूमवान् है, अतः वह्निमान् है।

स्वार्थानुमान स्वीयव्याप्त्यादिज्ञानसाध्य है, उसमें दूसरे को समझाना नहीं होता अतः इस तरहके पञ्चावयव वाक्यका प्रयोग नहीं किया जाता है।

तच्चानुमानं त्रिविधम्—केवलान्वयि-केवलव्यतिरेकि-अन्वय-व्यतिरेकिभेदात्। यत्र साध्यव्यतिरेको न कुत्राप्यस्ति स केवलान्वयी। यथा—'घटोऽभिधेयः प्रमेयत्वात्' इत्यत्राभिधेयत्वस्य साध्यस्य व्यतिरेको न कुत्राप्यस्ति।

यत्र साध्यप्रसिद्धिः पक्षातिरिक्ते नास्ति स केवलव्यतिरेकी, यथा—पृथिवी इतरेभ्यो भिद्यते पृथिवीत्वात्, यत्र इतरभेदाभावः तत्र पृथिवीत्वाभावः, यथा जलादौ। व्यतिरेकव्याप्तौ तु साध्याभावो व्याप्यः, हेत्वभावो व्यापकः।

व्याख्या—लिङ्गत्रैविध्यमुखेनानुमानत्रैविध्यमाह—तच्चेति०। साध्यव्यतिरेकः—साध्याभावः। न कुत्राप्यस्ति—सर्वस्यैव पदार्थत्वेनाभिधेयत्वात्—शक्त्या पदप्रतिपाद्य एव पदार्थ इत्यभिधीयते इत्युक्तेः। यत्रेतरेति। अत्र यद् गन्धवत्तदितरभिन्नमित्यन्वयदृष्टान्तो नास्ति पृथिवीमात्रस्य पक्षत्वात् किन्तु यत्रेतरभेदाभावस्तत्र पृथिवीत्वाभाव इत्येवंरूपो व्यतिरेकदृष्टान्त एवास्त्यतोऽयं प्रभेदः केवलव्यतिरेकिणः।

अनुवाद—अनुमानके तीन प्रभेद है—केवलान्वयि, केवलव्यतिरेकि और अन्वय-व्यतिरेकि। जिस अनुमानमें साध्यका व्यतिरेक अप्रसिद्ध हो उसे केवलान्वयि कहते हैं—जैसे-'घट अभिधेय है क्योंकि वह प्रमेय है'। इस अनुमानमें साध्य है अभिधेयत्व, उसका अभाव अप्रसिद्ध है (क्योंकि सभी पदार्थ अभिधेय ही होते हैं)। जिस अनुमानमें साध्य की प्रसिद्धि पक्षातिरिक्तमें नहीं हो उसे केवल व्यतिरेक कहते हैं, यथा-पृथिवी इतरसे भिन्न है क्योंकि उसमें पृथिवीत्व है, जहाँ इतरभेदाभाव होता है वहां पृथिवीत्वाभाव होता है जैसे जलादिमें। व्यतिरेकव्याप्तिस्थलमें साध्याभाव व्याप्य और हेत्वभाव व्यापक होता है।

यत्र साध्यं साध्याभावश्चान्यत्र प्रसिद्धः, सोऽन्वयव्यतिरेकी। यथा—'पर्वतो वह्निमान् धूमात्' इति। अन्वयव्यतिरेकिणि हेताववश्यं पञ्चरूपोपपत्तापेक्षणीया। पक्षवृत्तित्वं, सपक्षसत्त्वं, विपक्षव्यावृत्तत्वम्, अबाधितत्वम्, असत्प्रतिपक्षितत्वञ्चेति पञ्च रूपाणि।

केवलान्वयिनि विपक्षव्यावृत्तत्वरहितम्, केवलव्यतिरेकिणि सपक्षसत्त्वरहितं चतूरूपमेवापेक्षितम्।

व्याख्या—यत्रानुमाने साध्यमन्यत्र पक्षातिरिक्ते प्रसिद्धं तदभावोऽपि क्वचिदन्यत्र प्रसिद्धस्तदन्वयव्यतिरेकि। यथा पर्वत इति। अत्र साध्यो वह्निः स पक्षातिरिक्ते महानसादौ प्रसिद्धस्तदभावोऽपि च जलह्रदादौ प्रसिद्ध इति समन्वयः। अत्र

'यत्र धूमस्तत्र वह्निः' इत्यन्वयव्याप्तिः, यत्र वह्न्यभावस्तत्र धूमाभाव इति-व्यतिरेकव्याप्तिश्चास्ति तेनान्वयव्यतिरेकीदमनुमानम् । स्पष्टमन्यत् ।

अनुवाद—जिस अनुमानमें साध्य और साध्याभाव दोनों अन्यत्र प्रसिद्ध हों उसे अन्वयव्यतिरेकि कहते हैं—यथा 'पर्वतो वह्निमान् धूमात्' । अन्वयव्यतिरेकि हेतुस्थलमें पञ्चरूपोपपन्नता अवश्य अपेक्षणीय है । पञ्चरूप ये हैं—१ पक्षसत्त्व, २ सपक्षसत्त्व, ३ विपक्षव्यावृत्तत्व, ४ अबाधितत्व, ५ असत्प्रतिपक्षितत्व । केवलान्वयि स्थलमें विपक्षव्यावृत्तत्व के अतिरिक्त ४ चाररूप और केवलव्यतिरेकिस्थलमें सपक्षसत्त्वरहित ४ चाररूप अपेक्षित होते हैं ।

यत्र साध्यसन्देहः स पक्षः, यत्र साध्यनिश्चयः स सपक्षः, यत्र साध्याभावनिश्चयः स विपक्षः, साध्याभाववान् पक्षो बाधः, साध्य-विरोधिसाधको हेतुः स सत्प्रतिपक्षः ।

व्याख्या—सन्दिग्धसाध्यवान् पक्षः, यथा धूमवत्त्वे हेतौ पर्वतः पक्षस्तत्र वह्निसन्देहात् । निश्चितसाध्यवान् सपक्षः, यथा धूमवत्त्वे हेतौ महानसम्, तत्र प्रत्यक्षादिना वह्निनिश्चयात् । निश्चितसाध्याभाववान् विपक्षः, यथा तत्रैव महाह्रदः, तत्र वह्न्यभावस्य निश्चयात् । यस्य साध्याभावः प्रमाणान्तरेण निश्चितः स बाधितो हेतुः, यथा वह्निरनुष्णो द्रव्यत्वात् । अत्रानुष्णत्वं साध्यं तदभाव उष्णत्वं स्पर्शेन गृह्यत इति बाधितत्वम् । यस्य साध्याभावसाधकं हेत्वन्तरं विद्यते स सत्प्रतिपक्षः, यथा—शब्दोऽनित्यः कार्यत्वात् घटवत्, शब्दो नित्यः श्रावणत्वात् शब्दत्ववत् ।

अनुवाद—जहां साध्यसन्देह हो उसे पक्ष कहते हैं । जहां साध्यनिश्चय हो उसे सपक्ष कहते हैं । जहां साध्याभावनिश्चय हो उसे विपक्ष कहते हैं । साध्याभाववाला पक्ष बाध कहा जाता है । साध्यविरोधिवस्तुके साधकहेतु सत्प्रतिपक्ष है ।

सोपाधौ पक्षसपक्षसत्त्वाद्यन्यतमभङ्ग आवश्यकः, सोपाधिश्च स्व-व्यभिचारितासम्बन्धेनोपाधिविशिष्टः । उपाधिश्च त्रिविधः—साधनाव्या-पकत्वे सति शुद्धसाध्यव्यापकः । साधनाव्यापकत्वे सति पक्षधर्मावच्छिन्नसाध्यव्यापकः । साधनाव्यापकत्वे सति साधनावच्छिन्नसाध्य-व्यापकश्च ।

व्याख्या—सोपाधौ उपाधियुक्ते हेतौ पक्षसत्त्वसपक्षसत्त्वादिरूपपञ्चकमध्येऽन्यतमस्य रूपस्य भङ्गोऽपेक्षितस्तद्द्वारैवोपाधिसम्भवात् । हेतुर्हि सोपाधिको व्याप्यत्वासिद्धः । स्वव्यभिचारितासम्बन्धेन स्वाभाववद्वृत्तित्वसम्बन्धेन ।

अनुवाद—सोपाधिहेतुस्थलमें पक्षसत्त्व आदिमें किसी एक रूपका विघटन आवश्यक है, स्वाभावबद्वृत्तित्वसम्बन्ध से जो उपाधियुक्त हो वह सोपाधि कहा जाता है। उपाधिके तीन भेद हैं—१-साधनाव्यापकत्व होने पर शुद्धसाध्यव्यापक, २-साधनाव्यापकत्व होने पर पक्षधर्मावच्छिन्नसाध्यव्यापक, ३-साधनाव्यापकत्व होनेपर साधनावच्छिन्नसाध्यव्यापक।

आद्यो यथा—'अयोगोलकं धूमवद् वह्नेः' अत्र आर्द्रेन्धनप्रभववह्निमत्त्वमुपाधिः साधनाव्यापकत्वे सति शुद्धसाध्यव्यापकः। द्वितीयो यथा—'वायुः प्रत्यक्षः प्रत्यक्षस्पर्शाश्रयत्वात्'। अत्र बहिर्द्रव्यत्वावच्छिन्नस्य प्रत्यक्षत्वस्य साध्यस्य व्यापकमुद्भूतरूपवत्त्वमुपाधिः। तृतीयो यथा—'ध्वंसो विनाशी, जन्यत्वात्' अत्र जन्यत्वावच्छिन्नविनाशित्वव्यापकं भावत्वमुपाधिः।

व्याख्या—आद्यः-साधनाव्यापकत्वे सति शुद्धसाध्यव्यापकः। उदाहरति—अयोगोलकमिति० अत्र-यत्र धूमस्तत्रार्द्रेन्धनसंयोग इति साध्यव्यापकत्वम्, यत्र वह्निस्तत्रार्द्रेन्धनसंयोगो नास्ति अयोगोलके तदभावादिति साधनाव्यापकत्वं ततो लक्षणसङ्गतिः। द्वितीयः-साधनाव्यापकत्वे सति पक्षधर्मावच्छिन्नसाध्यव्यापकः, उदाहरति—वायुरिति० बहिर्द्रव्यत्वम्—आत्मातिरिक्तद्रव्यत्वम्।

अनुवाद—प्रथमका उदाहरण—'अयोगोलकं धूमवद् वह्नेः' यहाँपर आर्द्रेन्धनप्रभवत्व उपाधि साधनाव्यापक होकर शुद्धसाध्यव्यापक है। द्वितीयका उदाहरण—'वायुः प्रत्यक्षः प्रत्यक्षस्पर्शाश्रयत्वात्' यहाँपर बहिर्द्रव्यत्वावच्छिन्न प्रत्यक्षत्व साध्य है उसका व्यापक उद्भूतरूपत्व उपाधि है जो पक्षधर्मावच्छिन्न साध्यव्यापक है। तृतीयका उदाहरण—'ध्वंसो विनाशी जन्यत्वात्' यहां जन्यत्वावच्छिन्न विनाशित्वव्यापकभावत्व उपाधि है जो साधनजन्यत्वावच्छिन्न साध्यभूतविनाशित्वव्यापक है।

अथ हेत्वाभासाः कथ्यन्ते—सव्यभिचारविरुद्धसत्प्रतिपक्षासिद्धबाधिताः पञ्च हेत्वाभासाः।

व्यभिचारस्त्रिविधः—साधारणःसाधारणानुपसंहारिभेदात्।

साध्याभाववद् वृत्तित्वं साधारणत्वम्, यथा 'धूमवान् वह्नेः'।

सकलसपक्षव्यावृत्तत्वमसाधारणत्वम्, यथा 'पर्वतो वह्निमान् पर्वतत्वात्'।

सर्वपक्षकत्वमनुपसंहारित्वम्, यथा 'सर्वं प्रमेयम् अभिधेयत्वात्'।

व्याख्या—हेत्वाभासलक्षणं यथा—'अनुमितिप्रतिबन्धकयथार्थज्ञानविषयत्वं हेत्वाभासत्वम्'। हेतोराभासाः हेत्वाभासाः हेतुनिष्ठा दोषा इति शब्दार्थः। सव्यभिचारत्वम्—अनैकान्तिकत्वम्। साध्याभाववद्वृत्तित्वम्—धूमः साध्यस्तदभाववदयोगोलकं तत्र वृत्तित्वं वह्नेरिति लक्षणसमन्वयः। सकलसपक्षव्यावृत्तत्वम्—दृष्टान्ताप्रसिद्धिः। स्पष्टमन्यत्।

अनुवाद—हेत्वाभास पांच प्रकारके हैं—१ सव्यभिचार, २ विरुद्ध ३ सत्प्रतिपक्ष, ४ असिद्ध, ५ बाधित। सव्यभिचार तीन प्रकारका है—१-साधारण, २-असाधारण, ३-अनुपसंहारी। साध्याभाववान् में वृत्तिहेतु को साधारण कहते हैं, जैसे 'धूमवान् वह्नेः' इस अनुमानमें वह्नि। सकलसपक्षव्यावृत्त हेतुको असाधारण कहा जाता है, जैसे 'पर्वतो वह्निमान् पर्वतत्वात्' इसमें पर्वतत्वरूपहेतु सकलदृष्टान्तसे व्यावृत्त है। जिसमें सब पक्ष हो जाय उसे अनुपसंहारी कहा है, जैसे-'सर्वं प्रमेयमभिधेयत्वात्।'

साध्याभावव्याप्तो हेतुर्विरुद्धः, यथा—घटो नित्यः सावयवत्वात्।

सत्प्रतिपक्षो तथा—'पर्वतो वह्निमान् धूमात्' 'पर्वतो वह्न्यभाववान् महानसान्यत्वात्'।

असिद्धस्त्रिविधः—आश्रयासिद्धः, स्वरूपासिद्धः, व्याप्यत्वासिद्धश्च।

यत्र पक्षोऽसन् सिद्धसाधनं वा, स आश्रयासिद्धः। यथा—शशविषाणं नित्यम्, अजन्यत्वात्।

शरीरं हस्तादिमत्, हस्तादिमत्तया प्रतीयमानत्वात्।

यत्र पक्षावृत्तिर्हेतुः स स्वरूपासिद्धः। यथा 'पर्वतो वह्निमान् महानसत्वात्'।

व्याख्या—अत्र साध्यं नित्यत्वं तदभावोऽनित्यत्वं तद्व्याप्तो हेतुः सावयवत्वम्। सन् प्रतिपक्षः विरोध्यनुमानं यस्यासौ सत्प्रतिपक्षः। उदाहरणं मूलोक्तं सुबोधम्। यत्र पक्षः असन् अप्रसिद्धः, सिद्धसाधनम्—प्रतीतानुमानम्। शशविषाणमसत्। हस्तादिमत्त्वं साध्यं प्रतीतमेव तत्त्वेन प्रतीयमानत्वस्यैव हेतुत्वेनावलम्बनात्। महानसत्वस्य पक्षे पर्वतेऽवृत्तित्वेन स्वरूपासिद्धिः।

अनुवाद—जो हेतु साध्याभाव व्याप्त हो वह विरुद्ध कहाता है, जैसे—'घटो नित्यः सावयवत्वात्' इस अनुमानमें सावयवत्वरूपहेतु साध्याभावरूप अनित्यत्वसे व्याप्त है। सत्प्रतिपक्षका उदाहरण—'पर्वतो वह्निमान् धूमात्' 'पर्वतो वह्न्यभाववान् महानसान्यत्वात्' (यहां आद्य अनुमान दूसरे अनुमानसे सत्प्रतिपक्षित है) असिद्ध तीन प्रकारका है—१-आश्रयासिद्ध, २-स्वरूपासिद्ध, ३-व्याप्यत्वासिद्ध, जहां पक्ष

अप्रसिद्ध हो या सिद्धसाधन हो उसे आश्रयासिद्ध कहते हैं, जैसे—'शशविषाणं नित्यम् अजन्यत्वात्'। (यहां पक्ष शशविषाण अप्रसिद्ध है) 'शरीरं हस्तादिमत्, हस्तादिमत्तया प्रतीयमानत्वात्' (यहां हस्तादिमत्त्वसे हस्तादिमत्त्वका सिद्धसाधन है) जहां हेतु पक्षमें अवृत्ति हो वह स्वरूपासिद्ध है, यथा—'पर्वतो वह्निमान् महानसत्वात्'। यहां हेतु महानसत्व पक्ष पर्वतमें अवृत्ति है।

स च विशेषणासिद्धविशेष्यासिद्धभागासिद्धभेदाद् बहुविधः। आद्यो यथा—

शब्दोऽनित्यः, चाक्षुषत्वे सति जन्यत्वात्।
द्वितीयो यथा—शब्दोऽनित्यः, गुणत्वे सति परमाणुवृत्तित्वात्।
तृतीयो यथा—एतानि द्रव्याणि, निरवयवत्वात्।
सोपाधिर्व्याप्यत्वासिद्धो यथा—धूमवान् वह्नेः।
बाधो तथा—जलह्रदो वह्निमान्, द्रव्यत्वात्।
तेन एतद्दोषरहितो हेतुः सद्धेतुः।

इत्यनुमानं व्याख्यातम्।

व्याख्या—विशेषणासिद्धमुदाहरति शब्दोऽनित्य इति० अत्रानित्यत्वे सति चाक्षुषत्वविशिष्टजन्यत्वं हेतुस्तत्र चाक्षुषत्वरूपं विशेषणमसिद्धम्। द्वितीयः—विशेष्यासिद्धः। अत्र गुणत्वे सति परमाणुवृत्तित्वरूपे हेतौ शब्दस्य परमाणुवृत्तित्वरूपं विशेष्यमसिद्धम्। द्रव्यस्य निरवयवत्वं सावयवत्वं च, तत्र निरवयवत्वं न सर्वत्र किन्तु क्वचिदेवेति भागासिद्धो हेतुः। व्याप्यत्वासिद्धः—व्याप्यभाववान्। धूमवान् वह्नेरित्युदाहरणे वह्नौ धूमव्याप्यत्वं नास्ति, तदभाववति तदुपलब्धेरतो व्याप्यत्वासिद्धिः। बाधः—साध्यशून्यः पक्षो यत्रासौ बाधः। एतद्दोषरहितः हेत्वाभासरहितः। सद्धेतुः—अनुमापक इत्यर्थः।

अनुवाद—असिद्ध-विशेषणासिद्ध, विशेष्यासिद्ध, भागासिद्ध भेदसे बहुविध हैं। विशेषणासिद्धका उदाहरण—'शब्दोऽनित्यः चाक्षुषत्वे सति जन्यत्वात्'। विशेष्यासिद्धका उदाहरण—'शब्दोऽनित्यः, गुणत्वे सति परमाणुवृत्तित्वात्'। भागासिद्धका उदाहरण—'एतानि द्रव्याणि निरवयवत्वात्'। सोपाधिहेतुको व्याप्यत्वासिद्ध कहते हैं—यथा 'धूमवान् वह्नेः'। बाधका उदाहरण——'जलह्रदो वह्निमान् द्रव्यत्वात्'। इन दोषोंसे रहित हेतुको सद्धेतु कहते हैं।

अनुमान प्रकरण समाप्त

उपमितिकरणमुपमानम्। कीदृशो गवय इति प्रश्ने गोसदृशो गवय इत्युत्तरिते यदा गोसदृशं प्राणिनं पश्यति, तदा पूर्वोक्तं वाक्यार्थं स्मरति, अनन्तरम् 'अयं गवयपदवाच्यः' इति शक्तिग्रहः, सेयमुपमितिः। इत्युपमानं व्याख्यातम्।

व्याख्या—यत्रारण्यकेन केनचिद् ग्रामीणाय जनायोक्तं गोसदृशो गवयपदवाच्य इति पश्चाच्च तेन ग्रामीणजनेन क्वचिदरण्यादौ गवयो दृष्टः, तत्र गोसादृश्यज्ञानं यज्जातं तदुपमितिकरणम्, तदनन्तरं गोसदृशो गवयपदवाच्य इत्यतिदेशवाक्यार्थं स्मरणं यज्जायते तदेव व्यापारः, तदनन्तरं गवयो गवयपदवाच्य इति ज्ञानं यज्जायते तदुपमितिः, नत्वयं गवयपदवाच्य इत्युपमितिः, तथा सति गवयान्तरे शक्तिग्रहाभावप्रसङ्गात्। संज्ञासंज्ञिसम्बन्धज्ञानमुपमितिः। संज्ञा गवयपदम्, संज्ञी गवयः, तयोः सम्बन्धः शक्तिस्तज्ज्ञानमुपमितिरित्यर्थः। लक्षणं तु उपमिनोमीत्यनुव्यवसायगम्यमुपमितित्वमेव।

अनुवाद—उपमितिके करणको उपमान प्रमाण कहा जाता है। गवय कैसा होता है? इस प्रश्नका गोसदृश गवय है इस उत्तरके बाद जब वह गोसदृश प्राणीको देखता है तब उसे पूर्वोक्त वाक्यार्थकी याद हो आती है, अनन्तर 'यह गवयपदवाच्य है' ऐसा शक्तिग्रह होता है, यही उपमिति है।

विशेष—ननूपमानस्य प्रमाणान्तरत्वे मानाभावः? न च प्रत्यक्षादिप्रमितिविजातीयप्रमितिकरणत्वात्तस्य प्रमाणान्तरत्वम्, उपमितेः प्रत्यक्षादिप्रमितितो विजातीयत्वाभावादिति चेन्न, चक्षुरादिव्यापारविगमेऽपि उपमितेरुत्पादेन चाक्षुषत्वाद्यसम्भवात्। न वा मानसत्वम्, मानसोत्तरमनुत्पद्यमानाया उपमिनोमीति प्रतीतेर्विषयत्वात्, उपमित्यनन्तरं साक्षात्करोमीति प्रतीतेरनुदयेन तत्र प्रत्यक्षत्वे प्रमाणाभावाच्च। अन्यथाऽनुमितेरपि मानसत्वापत्तेः। नाप्यनुमितिः, व्याप्त्यादिज्ञानं विनाऽपि भावात्। न शब्दः, पदज्ञानाजन्यत्वात्। न स्मृतिः, अननुभूतार्थस्य स्मरणायोगात्। तस्मात्प्रमाणान्तरमेवेदम्। वैशेषिकास्तु—पदवाच्यत्वव्याप्यसादृश्यादिपरामर्शात् पदवाच्यत्वस्यानुमितिरेव, अतो नोपमानं प्रमाणान्तरमित्याहुः, तच्चिन्त्यम्, व्याप्तिज्ञानमन्तरेणापि पदवाच्यत्वप्रमितेरनुभवसिद्धत्वात्।

उपमान समाप्त

आप्तोक्तः शब्दः प्रमाणम्। प्रकृतवाक्यार्थगोचरयथार्थज्ञानवानाप्तः। पदज्ञानं करणम्, पदार्थोपस्थितिर्व्यापारः, आकाङ्क्षायोग्यताऽऽसत्तितात्पर्यज्ञानानि सहकारीणि, फलं शाब्दबोधः।

व्याख्या—आप्तोक्तः शब्दः प्रमाणम् इत्यस्य शब्दलक्षणत्वम् अर्थात् प्रमाणभूतशब्दलक्षणत्वम्, आप्तलक्षणमाह—प्रकृतेति० 'आप्तस्तु यथार्थवक्ता, रागादिवशादपि नान्यथावादी यस्सः' इति चरके पतञ्जलिः। पदज्ञानं करणं न तु ज्ञायमानं पदं करणम्, तथा मन्यमाने मौनिश्लोके द्वित्वादिबोधकविजातीयहस्तचेष्टादौ शाब्दबोधकरणत्वं न स्यात्। पदार्थोपस्थितिः—पदजन्यपदार्थोपस्थितिः। अन्यथा पदार्थोपस्थितत्वेन कारणत्वोक्तौ प्रत्यक्षादिना पदार्थोपस्थितावपि शाब्दबोधापत्तिः। पदजन्यपदार्थोपस्थितिरित्यत्र वृत्त्या पदजन्यत्वं बोध्यम्। तत्रैव च शक्तिज्ञानस्योपयोगः। आकाङ्क्षादिज्ञानं सहकारि।

शक्तिश्च पदेन सह पदार्थस्य सम्बन्धः, स चास्माच्छब्दादयमर्थो बोद्धव्य इतीश्वरेच्छारूपः। एकादेशेऽहनि पिता नाम कुर्यादितीश्वरेच्छायाः सत्त्वादाधुनिकेऽपि नाम्नि शक्तिरस्त्येव। आधुनिकसङ्केतितनदीवृद्धादिपदे न शक्तिरिति प्राञ्चः। नव्यास्तु ईश्वरेच्छा न शक्तिः, किन्त्विच्छैव, तेनाधुनिकसंकेतितेऽपि नदीवृद्धादिपदे शक्तिरस्त्येवेत्याहुः।

अनुवाद—आप्तसे उक्त शब्दको शब्द प्रमाण कहा जाता है। प्रकृतवाक्यार्थका यथार्थज्ञान जिसे हो उसे आप्त कहते हैं। शाब्दबोधमें पदज्ञानकरण और पदजन्यपदार्थोपस्थिति व्यापार है, आकाङ्क्षा, योग्यता, आसत्ति और तात्पर्यज्ञान सहकारी एवं शाब्दबोध फल है।

स्वरूपयोग्यत्वे सति अजनितान्वयबोधकत्वम् आकाङ्क्षा, तेन घटः, कर्मत्यम्, आनयनम्, कृतिः, इत्यत्र नान्वयबोधः, स्वरूपायोग्यत्वात्। 'अयमेति पुत्रो राज्ञः पुरुषोऽपसार्यताम्' इत्यत्र 'राज्ञः पुरुषः' इति नान्वयबोधः, पुत्रेण जनितान्वयबोधकत्वात्।

बाधकप्रमाविरहो योग्यता। तेन वह्निना सिञ्चतीत्यत्र नान्वयबोधः, अयोग्यत्वात्। अव्यवधानेनान्वयप्रतियोग्युपस्थितिरासत्तिः। तेन 'गिरिर्भुक्तं वह्निमान् देवदत्तेन' इत्यत्र नान्वयबोधः।

तत्तदर्थप्रतीतीच्छयोच्चरितत्वं तात्पर्यम्, तेन भोजनप्रकारणादौ 'सैन्धवमानय' इत्युक्तेऽश्वान्वयबोधो न भवति।

व्याख्या—स्वरूपयोग्यत्वमत्र शाब्दबोधजननस्वरूपयोग्यत्वम्। अजनितान्वयबोधकत्वम् उत्थिताकाङ्क्षत्वम्, जनिते बोधे तदाकाङ्क्षा निवर्त्तते। पुत्रेण जनितान्वयबोधकत्वात्—'राज्ञः' इत्यस्य पुत्रेण शब्देन सह जनितबोधतया निवृत्ताकाङ्क्षत्वात्।

बाधकप्रमाया बाधज्ञानस्य विरहः अभावः । तेन योग्यतायाः कारणत्वस्वीकारेण । वह्नेः सेकसाधनत्वायोगात् ।

अन्वयप्रतियोगी—अन्वयभाक् । गिरिरित्यतोऽव्यवधानेन वह्निमान् इत्यस्यासत्त्वादासत्तिविरहः ।

अनुवाद—स्वरूपयोग्य होकर जो अजनितान्वयबोध हो उसे आकाङ्क्षा कहते हैं । इससे 'घटः' 'कर्मत्वम्' 'आनयनम्' 'कृतिः' इस विशकलित उपस्थिति से शाब्दबोध नहीं होता है, क्योंकि यह शाब्दबोध स्वरूपायोग्य है । 'अयमेति पुत्रो राज्ञः पुरुषोऽपसार्यताम्' यहाँ 'राज्ञः पुरुषः' ऐसा अन्वय बोध नहीं होता है क्योंकि 'राज्ञः' पद पुत्रपदके साथ जनितान्वय बोध होनेके कारण निराकाङ्क्ष है ।

बाधकप्रमाके अभावको योग्यता कहते हैं । अतः 'वह्निना सिञ्चति' इस पदसे अन्वयबोध नहीं होता है क्योंकि वह्निमें सेककारणता बाधित है ।

अव्यवधानेन अन्वयप्रतियोगी पदकी उपस्थितिको आसत्ति कहते हैं । अतः 'गिरिर्भुक्तम् अग्निमान् देवदत्तेन' यहां अन्वयबोध नहीं होता है, क्योंकि गिरिपदके साथ अन्वयप्रतियोगी वह्निमान् पदकी अव्यवधानेन उपस्थिति नहीं है, बीचमें भुक्तं पद व्यवधान है ।

तत्तदर्थप्रतीतीच्छयोच्चरितत्व ही तात्पर्य है । अतः भोजन प्रकरणमें उच्चरित सैन्धव शब्दसे अश्वका बोध नहीं होता है क्योंकि उस अर्थमें तात्पर्य नहीं है ।

वृत्त्या विना शब्देन नान्वयबोधो जन्यते । वृत्तिर्द्विविधा—शक्तिर्लक्षणा च । शक्तिः घटादिपदस्य घटादौ । लक्षणा यथा—'गङ्गायां घोषः प्रतिवसति' इत्यत्र गङ्गापदार्थे प्रवाहे घोषान्वयानुपपत्त्या गङ्गापदस्य तीरे लक्षणा कल्प्यते, तया वृत्त्या तीरे उपस्थिते तीरे घोषः प्रतिवसतीत्यन्वयबोधो भवति । गौणीवृत्तिरपि लक्षणैव, यथाऽग्निर्माणवकः, गौर्वाहीकः, अत्र लक्षणयाऽग्न्यादिसादृश्यं प्रतीयते ।

व्याख्या—शब्दस्य वृत्त्यैवार्थबोधकतया तया विना नान्वयबोधजनकत्वं किन्तु वृत्तिविशिष्टस्यैव शब्दस्य तत्त्वमिति तदाह–वृत्त्येति० । शक्तिः—अर्थस्मृत्यनुकूलपदार्थसम्बन्धः । तद्ग्रहश्च 'शक्तिग्रहं व्याकरणोपमानकोशाप्तवाक्याद् व्यवहारतश्च । वाक्यस्य शेषाद्विवृतेर्वदन्ति सान्निध्यतः सिद्धपदस्य वृद्धाः' इत्युक्तप्रकारैर्भवति । तत्र जातावेव शक्तिग्रहः, न तु व्यक्तौ, व्यभिचारात्, आनन्त्याच्च । प्रवाहे—भगीरथरथखातावच्छिन्नजलप्रवाहे । घोषान्वयानुपपत्त्या=घोषाधिकरणत्वासिद्धया । लक्षणाशक्तिस्थानीया बोधकतारूपा वृत्तिः । लक्षणापदस्य 'शक्यसम्बन्धः' इत्यर्थः । लक्ष ,

णायां निमित्तद्वयं प्रयोजनं रूढिश्च । शक्यार्थसम्बन्धस्य नानाविधत्वेन क्वचित्सामीप्यं क्वचित् तादर्थ्यम्, क्वचित्साहश्यं च सम्बन्धः । तत्र साहश्यमूला लक्षणा गौणी-वृत्तिरपि कथ्यते तथा चोदाहरति—अग्निर्माणवक इति० ।

अनुवाद—वृत्तिके बिना शब्दसे अर्थबोध नहीं होता है । वृत्ति दो प्रकार की होती है—शक्ति और लक्षणा । घटादिपद की शक्ति घटादि अर्थमें है । लक्षणाका उदाहरण 'गङ्गायां घोषः', यहां गङ्गापदार्थ प्रवाहमें घोषाधिकरणत्व अनुपपन्न है अतः गङ्गापदकी तीरमें लक्षणा मानी जाती है । इस लक्षणाके द्वारा तीरकी उपस्थिति होनेसे 'तीरे घोषः' यह अन्वय उत्पन्न होता है । गौणीवृत्ति भी लक्षणा ही है, यथा—'अग्निर्माणवकः' 'गौर्वाहीकः' । यहां लक्षणाद्वारा अग्न्यादिसादृश्य प्रतीत होता है ।

शक्तं पदं चतुर्विधम्, यौगिकम्, रूढम्, योगरूढम्, यौगिक-रूढञ्च । आद्यं यथा—पाचकादिपदं योगार्थे पाककर्त्तरि शक्तम् । द्वितीयं यथा—विप्रादिपदं रूढ्या ब्राह्मणवाचकम् । तृतीयं यथा-पङ्कजादिपदं योगरूढ्या पङ्कजनिकर्त्तृत्वे पद्मत्वेन च पद्मवाचकम् । चतुर्थं यथा-उद्भिदादिपदं यौगिकं तरुगुल्मादेः, रूढं यागविशेषस्य वाचकम् ।

व्याख्या—योगोऽवयवशक्तिस्तन्मात्रेणार्थप्रतिपादकं यौगिकं यथा पाचकपदमवयवयोः पचधातुकृत्प्रत्ययोः शक्त्याऽर्थस्य पाककर्त्तृत्वस्य प्रतिपादकम् । समुदायशक्ती रूढिस्तन्मात्रेणार्थप्रतिपादकं रूढम्, यथा विप्रादिपदम् । योगरूढिभ्यां परस्परसहकारेणार्थप्रतिपादकं योगरूढम् यथा पङ्कजादिपदम्, पङ्कजनिकर्त्तृत्वेन योगेन पद्मत्वेन च रूढ्या कमलवाचकम् । यौगिकं च तद्रूढञ्चेति व्युत्पत्त्या योगेन रूढ्या च परस्परसहकारेणार्थप्रतिपादकं यौगिकरूढम् । यथोद्भिदादिपदम्, योगेन तरुगुल्मादेः रूढ्या तु यागविशेषस्य वाचकम् ।

अनुवाद—शक्त्याश्रय पदके चार प्रभेद हैं—यौगिक, रूढ, योगरूढ, यौगिक-रूढ । यौगिक-पाचकादिपद अवयवार्थरूप पाककर्त्ता अर्थमें शक्त है । द्वितीय रूढ-विप्रादिपद ब्राह्मणवाचक है । तृतीय योगरूढ-पङ्कजादिपद पङ्कजनिकर्त्तृत्वेन योगसे और पद्मत्वेन रूपेण रूढिसे वाचक है । चतुर्थ यौगिकरूढ-उद्भिद् आदिपद यौगिक-रूपमें तरुगुल्म आदिका और रूढ रूपमें यागविशेषका वाचक है ।

लक्षणा द्विविधा—जहत्स्वार्था अजहत्स्वार्था च । आद्या यथा—'गङ्गायां घोषः' इत्यादौ । द्वितीया यथा—'सर्वे छत्रिणो यान्ति' इत्यादौ अत्र छत्रिणस्तदितरस्यापि गमनान्वयः ।

व्याख्या—जहति पदानि स्वार्थं यस्यां सा जहत्स्वार्था, तदुदाहरणं गङ्गायां घोष इति० अत्र गङ्गापदं स्वार्थं प्रवाहं जहातीति समन्वयः। न जहति पदानि स्वार्थं यस्यां साऽजहत्स्वार्था, तदुदाहरणं छत्रिण इति। अत्रैकसार्थवाहित्वेन रूपेण छत्रितदन्ययोर्बोधात्स्वार्थाहानम्। तात्पर्यानुपपत्तिश्च लक्षणाबीजम्, नान्वयानुपपत्तिस्तथा, एवं हि सति कदाचिद् गङ्गापदस्य तीरे कदाचिद् घोषपदस्य मत्स्यादौ लक्षणेति नियमो न स्यात्।

अनुवाद—लक्षण दो प्रकारकी है—जहत्स्वार्था अजहत्स्वार्था। प्रथमका उदाहरण—'गङ्गायां घोषः'। द्वितीयका उदाहरण—'सर्वे छत्रिणो यान्ति'। यहां छत्रियों तथा तदितरोंका भी गमनमें अन्वय होता है।

विशेष—प्रमाण निरूपण समाप्त हो गया। इस प्रसङ्गमें इतना जान लेना चाहिये कि किसके मतमें कितने प्रमाण माने जाते हैं—

१. चार्वाक एक ही प्रमाण मानते हैं—प्रत्यक्ष।
२. बौद्ध और वैशेषिक दो प्रमाण मानते हैं—प्रत्यक्ष, अनुमान।
३. सांख्य और योग तीन प्रमाण मानते हैं—प्रत्यक्ष, अनुमान, शब्द।
४. नैयायिक चार प्रमाण मानते हैं—प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द।
५. प्राभाकर पांच प्रमाण मानते हैं—चार पूर्वोक्त, पञ्चम अर्थापत्ति।
६. कुमारिल तथा वेदान्ती छः प्रमाण मानते हैं—पांच पूर्वोक्त षष्ठ अभाव।
७. पौराणिक लोग आठ प्रमाण मानते हैं—छः पूर्वोक्त सप्तम-ऐतिह्य, अष्टम-संभव।

यहां इतना और जान लेना चाहिये कि नैयायिकोंने स्वाभिमत चार प्रमाणोंके अतिरिक्त प्रमाणोंका किस प्रकार कहां अन्तर्भाव कर दिया है।

'देवदत्तो रात्रौ भुङ्क्ते दिवाऽभुञ्जानत्वे सति पीनत्वात्, इत्यनुमानेनैव रात्रिभोजनस्य सिद्धतयाऽर्थापत्तिर्न प्रमाणान्तरम्। एवमभावोऽपि न प्रमाणान्तरम्-यद्यत्र घटोऽभविष्यत्तर्हि भूतलमिवाद्रक्ष्यतेति तर्कसहकारिणाऽनुपलम्भसनाथेन प्रत्यक्षेणैवाभावग्रहणात्। शते पञ्चाशदिति सम्भवोऽप्यनुमानमेव। इह वटे यक्षः प्रतिवसतीति ऐतिह्यमपि अज्ञातवक्तृमूलकः शब्द एव। तदेवं प्रमाणचतुष्कमुपपन्नम्।

अथ शाब्दबोधप्रक्रिया

'देवदत्तो ग्रामं गच्छति' इत्यत्र ग्रामकर्मकगमनजनकवर्त्तमानकृतिमान् इत्यन्वयबोधः। द्वियीयाया अर्थः कर्मत्वम्, धातोर्गमनम्, जनकत्वं संसर्गमर्यादालभ्यम्, लटो वर्त्तमानत्वम्, आख्यातस्य कृतिः, तत्सम्बन्धः संसर्गमर्यादया लभ्यः।

यत्र कर्त्तरि कृतेर्बाधः, तत्राख्यातस्य व्यापारादौ लक्षणा। यथा—रथो गच्छतीत्यत्र गमनजनकवर्त्तमानव्यापारवान् रथः।

दधि पश्यतीत्यादौ द्वितीयालोपस्थले दधिशब्द एवाजहत्स्वार्थलक्षणया दधिकर्मत्वं बोधयति। एकवचनाद्युपस्थितमेकत्वादि सर्वत्र प्रथमादिपदमुपस्थापयति।

व्याख्या—गमनं संयोगः। बोधमुपपादयितुं पदार्थानाह—द्वितीयायाः इति० ग्रामपदाद् द्वितीयायाः। वर्त्तमानत्वं तिबर्थः। जनकत्वमत्रानुकूलत्वपरं बोध्यम्। संसर्गमर्यादालभ्यम्—'शाब्दबोधे चैकपदार्थेऽपरपदार्थस्य संसर्गः संसर्गमर्यादया लभ्यते' इत्यामरप्रसिद्धनियमेनाकाङ्क्षाभास्यमित्यर्थः।

कृतेर्बाधः—कर्तुरचेतनतयाऽनुपपत्तिः। कृतिर्हि प्रयत्नः, तस्याश्चात्मगुणतयाऽचेतने बाधो बोध्यः। व्यापारे लक्षणा—व्यापारपरत्वमत्र तिङः। व्यापारस्त्वचेतनेरथादावपि सम्भवतीत्यभिमानेनेदम्। कर्तृत्वकर्मत्वादिवाचकत्वमादिविभक्तिविरहे कथं बोध इति व्यवस्थापयति—दधि पश्यतीति० प्रथमादिपदस्य प्रथमान्तपदमित्यर्थः।

अनुवाद—शाब्दबोध-प्रक्रिया प्रारम्भ करते हैं। 'देवदत्तो ग्रामं गच्छति' इस वाक्यसे 'ग्रामकर्मकगमनजनकवर्त्तमानकृतिमान् देवदत्तः' इत्याकारकशाब्दबोध होता है, क्योंकि ग्राम पदोत्तर द्वितीया का अर्थ है कर्मत्व, गम धातु का अर्थ है गमन, जनकत्वरूप सम्बन्ध का लाभ संसर्गमर्यादा से होगा, तिबर्थ हुआ कृति, आश्रयत्व संसर्गमर्यादालभ्य है।

जिस कर्ता में कृतिका बाध होगा, वहां आख्यात की लक्षणा व्यापार में होगी। जैसे—'रथो गच्छति' इस वाक्य से 'गमनजनकवर्त्तमानव्यापारवान् रथः' यह बोध होता है। 'दधि पश्यति' इत्यादिस्थल में जहां द्वितीया का लोप हुआ रहेगा वहां दधि शब्द ही अजहत्स्वार्था लक्षणासे 'दधिकर्मत्व' रूप अर्थका बोध होता है। एक वचनादि से उपस्थित एकत्वादिको सर्वत्र प्रथमान्तपद उपस्थापित करता है।

'देवदत्तेन ग्रामो गम्यते' इत्यस्य देवदत्तवृत्तिकृतिजन्यगमनजन्यफलशाली ग्राम इत्यर्थः, वृत्तित्वं संसर्गबललभ्यम्, तृतीयार्थश्च कृतिः, जन्यत्वं संसर्गः, गमनं धात्वर्थः, जन्यत्वं संसर्गः, फलं कर्मात्मनेपदार्थः, शालित्वं संसर्गः।

भावप्रत्यये तु 'देवदत्तेन सुप्यते' इत्यस्य 'देवदत्तवृत्तिकृतिजन्यः स्वापः' इत्यर्थः। भावप्रत्ययस्थले फलाभावात् आत्मनेपदार्थो न भासते।

व्याख्या—'ग्रामो गम्यते' इत्यत्र ग्रामरूपे कर्मणि लट्, कर्त्ता देवदत्तः। फलमत्र संयोगरूपम्। शाब्दबोधाकारान्तःपातिपदार्थानामागमं समर्थयति–वृत्तित्वमित्यादिना। भावप्रत्ययस्थले कर्माभावात्सम्भवन्तं विशेषं प्रदर्शयितुमाह–भावप्रत्यय इति। फलाभावात्—कर्मणः फलनियतत्वाद् भावप्रत्यये कर्माभावान्न फलप्रतीतिरिति भावः।

अनुवाद—'देवदत्तेन ग्रामो गम्यते' इस वाक्य से 'देवदत्तवृत्तिकृतिजन्यगमनजन्यफलशाली ग्रामः' ऐसा शाब्द बोध होता है। वृत्तित्व संसर्गमर्यादालभ्य है, तृतीया का अर्थ कृति है, जन्यत्वसंसर्ग है, गमन धातु का अर्थ है, जन्यत्वसंसर्ग, फल कर्मात्मनेपदार्थ एवं शालित्वसंसर्ग है।

भावप्रत्ययस्थल—'देवदत्तेन सुप्यते' यहाँ 'देवदत्तवृत्तिकृतिजन्यस्वाप' यह आकार बोधका होता है। भावप्रत्ययस्थल में फल के नहीं होने से आत्मनेपदार्थ भासित ही नहीं होता है।

भविष्यत्त्वं लटोऽर्थः। तच्च विद्यमानप्रागभावप्रतियोग्युत्पत्तिकत्वम्; तेन 'गमिष्यति' इत्यत्र विद्यमानप्रागभावप्रतियोग्युत्पत्तिकगमनानुकूलकृतिमान् इत्यर्थः। लुटोर्थोऽनद्यतनत्वमपि।

लुङोऽर्थ उत्पत्तिभूतत्वं च, भूतत्वमतीतत्वम्, तच्चोत्पत्तौ अन्वेति, तथा च विद्यमानध्वंसप्रतियोग्युत्पत्तिकत्वं लब्धम्।

लिटोऽनद्यतनत्वं, परोक्षत्वम्, अतीतत्वं चार्थः, तदन्वयः पूर्ववदुत्पत्तौ।

व्याख्या—लृटोऽर्थो भविष्यत्त्वं तथा च सूत्रम्—'लृट् शेषे च' इति। अत्र सूत्रे 'भविष्यति गम्यादयः' इत्यतः 'भविष्यति' इति सम्बध्यते। भविष्यत्त्वं परिष्करोति–विद्यमानेति० यदुत्पत्तिप्रागभावोऽधुना तद्भविष्यदिति भावः। शाब्दबोधमाह–विद्यमानेति०। अनद्यतनत्वमपीत्यपिना भविष्यत्त्वपरिग्रहः। तेनानद्यतनभविष्यत्त्वं लुडर्थो बोध्यः। भविष्यत्त्वं परिष्कृतमेव। अनद्यतनत्वमद्यतनभिन्नत्वम्। 'अतीताव्यवहितरात्रिपश्चार्धविशिष्टागामिरात्रिपूर्वार्धोपेतं दिनमद्यतनम्' इति वृत्तिकारादयः। कैयटस्तु–'अतीतरात्रेरन्त्ययामेनागामिरात्रेराद्ययामेन सहितो दिवसोऽद्यतनः' इत्यूचे। भूतत्वं चेति० 'भूते लुङि'ति सूत्रात् भूते लुङ्विधानात्। यस्या उत्पत्तेर्ध्वंसो जातस्तादृशोत्पत्तिको भूतः, एतेन विद्यमानेऽपि घटे घटोऽभूदिति प्रयोग उपपद्यते। अनद्यतनत्वविशिष्टं परोक्षत्वं लिडर्थः—'परोक्षे लिट्' इति सूत्रात्। परोक्षत्वं च—'साक्षात्करोमीत्येतादृशविषयताशालिज्ञानाविषयत्वम्'। कथं तर्हि–'व्यातेने किरणा-

वलीमुदयनः सत्तर्कतेजोमयीम्' इति स्वक्रियायाः स्वपरोक्षत्वासम्भवादिति चेत्-प्रमाद एवायमिति बहवः। वस्तुतस्तु न वास्तवं पारोक्ष्यादि लिडादिनियामकम्, 'अध्यास्त सर्वर्तुसुखामयोध्याम्' इत्यादौ लङ्नापत्तेः, किन्तु वैवक्षिकं तत्, तथा चोक्तं सारकृता—'अनद्यतनभूतत्वेन विवक्षिते लङ्'इति। प्रकृते—सूक्ष्मकालेन करिष्यामि यत्र काले मयाऽपि साक्षात्कर्तुमशक्यमिति प्रतीतिफलकपारोक्ष्यविवक्षायाश्च सत्त्वाल्लिङुत्पत्तिरिति।

अनुवाद—लृट् लकारकारका अर्थ है भविष्यत्व। भविष्यत्व हुआ—विद्यमानप्रागभावप्रतियोग्युत्पत्तिकत्व। एतदनुसार 'गमिष्यति' का अर्थ हुआ—विद्यमानप्रागभावप्रतियोग्युत्पत्तिकगमनानुकूलकृतिमान्। लुट् लकार का अर्थ अनद्यतनत्व भी है। लुङ् लकार का अर्थ है—उत्पत्ति और भूतत्व। भूतत्व हुआ अतीतत्व, उत्पत्तिमें उसका अन्वय होता है। फलतः-भूतत्व हुआ—वर्त्तमानध्वंसप्रतियोग्युत्पत्तिकत्व। लिट् लकार का अर्थ है अनद्यतनत्व, परोक्षत्व और भूतत्व। इसका भी अन्वय पूर्वोक्तानुसार उत्पत्तिमें होता है।

लङोऽनद्यतनत्वमतीतत्वञ्चार्थः। विधिलिङोर्थः कृतिसाध्यत्वे सति बलवदनिष्टाजनकेष्टसाधनत्वम्। 'स्वर्गकामो यजेत' इत्यादौ कृतिसाध्यबलवदनिष्टाजनकेष्टसाधनयागकर्ता स्वर्गकाम इत्यर्थः।

आशीर्लिङ्-लोटोरर्थो वक्त्रिच्छाविषयत्वम्। तेन 'घटमानय' इत्यत्र घटकर्मकमदिच्छाविषयानयनानुकूलकृतिमाँस्त्वमित्यन्वयबोधः।

व्याप्यक्रियया व्यापकक्रियाया आपादनं लृङोर्थः, तात्पर्यवशात् क्वचिद्भूतत्वं क्वचिद्भविष्यत्वञ्च लृङा बोध्यते।

व्याख्या—लङ्लकारस्य भूतत्वमनद्यतनत्वं चार्थः—'अनद्यतने लङ्' इति सूत्रात्। विधिलिङ्लकारस्य कृतिसाध्यत्वमिष्टसाधनत्वं बलवदनिष्टानुबन्धशून्यत्वं चार्थः, तेन विध्यर्थत्वमेषां फलितम्। इदमेव च प्रवर्त्तकत्वमपि, तेन कृत्यसाध्ये समुद्रसन्तरणादौ इष्टसाधनतयाऽज्ञाते जलताडनादौ बलवदनिष्टानुबन्धिनि च मधुविषसंपृक्तभोजनादौ न प्रवृत्तिः। आशिषि लिङो लोटश्च वक्त्रिच्छाविषयत्वम्—उच्चारयितृ-पुरुषकामनाविषयत्वम् अर्थः। त्वया क्रियमाणं घटानयनं मया काम्यमानमस्तीति घटमानयेत्यस्यार्थः। तदेव प्रपञ्चयति—घटकर्मकेति०।

व्याप्येति० तदभाववदवृत्तित्वमत्र तद्व्याप्यत्वम्। 'वह्निश्चेत्प्राज्वलिष्यत् ओदनमपक्ष्यत्' इत्युदाहरणम्। अत्र वह्निप्रज्वलनव्याप्य ओदनपाक इति प्रतिपत्त्या

व्याप्याया वह्निप्रज्वलनक्रियाया व्याप्ययोदनपाकक्रिययाऽऽपादनं बोध्यम्। अस्य लकारस्य क्वचिद्भूतत्वं भविष्यत्त्वं च तात्पर्यानुसारेणार्थः, तत्र भूतप्रतीतितात्पर्येण—'सुवृष्टिश्चेद् अभविष्यत् सुभिक्षमभविष्यत्' इति प्रयोगः, भविष्यत्त्वप्रतीतितात्पर्येण च 'रामश्चेदागमिष्यत् सुमहान् प्रमोदोऽभविष्यत्' इति प्रयोगः।

अनुवाद—लङ्लकारका अनद्यतनत्व विशिष्ट अतीतत्व अर्थ है।

विधिलिङ् का अर्थ है कृतिसाध्यत्वबलवदनिष्टाजनकेष्टसाधनत्व। 'स्वर्गकामो यजेत' इस वाक्यसे 'कृतिसाध्यबलवदनिष्टाजनकेष्टसाधनयागकर्ता स्वर्गकामः' ऐसा बोध होता है।

आशीर्लिङ् और लोट्का अर्थ है 'वक्त्रिच्छाविषयत्व'। अतः 'घटमानय' इस वाक्यसे 'घटकर्मकमदिच्छाविषयानयनानुकूलकृतिमान् त्वम्' ऐसा बोध होता है। व्याप्यक्रिया द्वारा व्यापक क्रिया का आपादन ही लृङ् लकारका अर्थ है। तात्पर्यवशात् कहीं भूतत्व और कहीं भविष्यत्त्व लृङ् लकारसे प्रतीत होता है।

सनः कर्त्तुरिच्छा अर्थः, सन्नुत्तराख्यातस्याश्रयत्वे लक्षणा, सविषयकार्थकप्रकृतिकाख्यातस्य आश्रयत्वे लक्षणाया 'घटं जानाति' इत्यादौ क्लृप्तत्वात्।

यङोऽर्थः पौनःपुन्यं, तच्च—तदानीन्तनप्रकृत्यर्थसजातीयक्रियान्तरसध्वंसकालीनत्वे सति वर्त्तमानादिकृतिविषयत्वम्। पापच्यते इत्यादौ तादृशकालीनत्वमेव यङा प्रत्याय्यते, आख्यातस्य चरमदलवाचकत्वान्न विशिष्टवाचकत्वं यङा तदानीन्तनत्वं च स्थूलकालमादाय।

व्याख्या—कर्त्तुरिच्छा कर्तृसमवेता इच्छा "धातोः कर्मणः समानकर्तृकादिच्छायां वा" इति सूत्रेण इच्छायामर्थे सनोऽनुशासनात्। सन्नुत्तराख्यातस्य—सन्नन्तादायातस्य तिङः। तथा च 'देवदत्तो जिगमिषति ग्रामम्' इत्यत्र ग्रामकर्मकगमनानुकूलेच्छाश्रयो देवदत्त इति बोधः। नन्वत्रापि पचतीत्यादाविव कृतिरेवार्थोऽस्त्विति चेन्न, घटं जानातीत्यादि सविषयकार्थकप्रकृतिकज्ञाधातुस्थल आश्रयत्वे लक्षणायाः क्लृप्ततयात्रापि तथौचित्यात्। सविषयकार्थकप्रकृतिकाः—येषां धातूनामर्थाः ज्ञानेच्छादिरूपतया सविषयकाः विषयैः सहितास्ते।

एकस्यां क्रियायां विरतायां तत्सजातीयद्वितीयतृतीयक्रियाजन्म तत् क्रियापौनःपुन्यम्, तादृशकालीनत्वमेव यङोऽर्थः। स्थूलकालम्—यावता कालेन क्रियायाःभूयो भावः प्रत्यक्षीभावस्तावन्तं कालम्। क्षणिककालस्य ग्रहणे तु प्राक्तनक्रियाकालतत्सजातीयद्वितीयादिक्रियाकालयोर्भेदेन तदानीन्तनकालवृत्तित्वं न स्यादिति बोध्यम्।

अनुवाद—सन् प्रत्ययका अर्थ है कर्त्ताकी इच्छा। सन् के आगे आनेवाले आख्यातकी आश्रयस्वरूप अर्थमें लक्षणा की जाती है, क्यों सविषयक अर्थवाले धातुओंसे होनेवाले आख्यातका आश्रयत्व लक्षक होना 'घटं जानाति' इत्यादि स्थलमें कल्पित है।

यङ् प्रत्यय का अर्थ है पौनःपुन्य। पौनःपुन्य—तदानीन्तनप्रकृत्यर्थसजातीय क्रियान्तरध्वंसकालीनत्वे सति वर्त्तमानादिकृतिविषयत्व है। (एक क्रियाके बाद दूसरी क्रियाका जारी रहना ही पौनःपुन्य होगा, इस स्थितिमें द्वितीय क्रिया प्रथम क्रिया ध्वंसकालीन ही होगी, प्रथम क्रिया द्वितीय क्रिया सजातीय भी होगी) पापच्यते इत्यादि स्थलमें तादृश कालीनत्व ही यङ् प्रत्ययका अर्थ होता है। आख्यात अन्तिम भागका वाचक होता है अतः प्रथम भागको यङ् वाच्य माना जाता है। स्थूलकालकी दृष्टिसे दूसरी क्रिया प्रथमक्रिया ध्वंसकालीन मानी जाती है।

पूर्वकालीनत्वं कर्त्ता च क्त्वाऽर्थः। पूर्वत्वञ्च सन्निहितक्रियाऽपेक्षया बोध्यम्। तत्पूर्वकालीनत्वञ्च तत्प्रागभावकालवृत्तित्वं, तदुत्पत्तिकालीनध्वंसप्रतियोगिकालवृत्तित्वं वा। तेन 'भुक्त्वा व्रजति' इत्यत्र गमनप्रागभावावच्छिन्नकालवृत्तिभोजनकर्त्रभिन्नो व्रजतीत्यर्थः, समानविभक्तिकृतामभेदेन धर्मिवाचकत्वात्, अव्ययत्वेन क्त्वापरविभक्तिलोपात्।

कालस्तात्पर्यवशात् व्यवहिताव्यवहितसाधारणो बोद्धव्यः, तेन 'पूर्वस्मिन् अब्दे गत्वाऽस्मिन्नब्दे समागतः' इत्येतादृशप्रयोगसङ्गतिः।

व्याख्या—पूर्वकालीनत्वं—सन्निहितपूर्वकालवृत्तित्वम्, सान्निध्यमपि क्रियान्तरापेक्षया। कर्त्ता कृद्वा क्त्वोऽर्थः। तत्पूर्वकालीनत्वम्-यस्मिन् काले तदीयः प्रागभावस्तत्कालावस्थायित्वस्वरूपम् वा तदुत्पत्तिकाले यस्य कालस्य ध्वंसस्तद्वृत्तित्वम्। 'भोजनकर्त्ता' इत्येतत्पर्यन्तं क्त्वाप्रत्ययार्थः। अभेदो विभक्त्यर्थः। नन्वत्र विभक्त्यभावेन तथार्थो दुर्लभ इत्यत्राह—अव्ययत्वेनेति०। पूर्वकालश्चात्र तात्पर्यवशगो व्यवहितोऽव्यवहितश्च ग्रहीतुं शक्यस्तत्प्रयोगदर्शनात्०तदाह—काल इति।

अनुवाद—क्त्वा प्रत्यय का अर्थ है पूर्वकालीनत्व और कर्त्ता। पूर्वत्व यहां सन्निहित क्रियासे लिया जाता है। तत्पूर्वकालीनत्वका अर्थ है—तत्प्रागभावकालवृत्तित्व या तदुत्पत्तिकालीनध्वंसप्रतियोगिकालवृत्तित्व। अतः 'भुक्त्वा व्रजति' यहां गमन प्रागभावसे उपलक्षित कालमें वृत्ति भोजनकर्त्तासे अभिन्न हो जाता है ऐसा अर्थ होता है। अभेदपर्यन्तानुधावन इसलिये किया जाता है कि समानविभक्तिक कृत् का अभेदेन धर्मिवाचकत्व स्वीकृति है।

तात्पर्यानुसार काल यहां व्यवहिताव्यवहितसाधारण लिया जाता है। अतः—'पूर्वस्मिन्नब्दे गत्वाऽस्मिन्नब्दे समागतः' ऐसा प्रयोग सङ्गत होता है।

इच्छावान् तुमुनोऽर्थः। भोक्तुं व्रजतीत्यस्य भोजनेच्छावान् व्रजतीत्यर्थः। 'भोक्तुमिच्छति' इत्यत्र तु कर्त्तरि लक्षणा, भोजनकर्त्तारमात्मानमिच्छतीत्यर्थः, 'सविशेषणे हि' इति न्यायात् विशेषणे कृताविच्छान्वयः।

व्याख्या—इच्छावान् तुमुन्प्रत्ययस्यार्थः, तथा सति 'भोक्तुमिच्छति' इत्यत्रेच्छाद्वयोपस्थितौ का गतिरिति हृदये निधायाह-कर्तरीति० तथा च लक्षणया तुमुनाकर्त्तर्युपस्थिते तस्येष्धात्वर्थेच्छायामन्वयः। सविशेषणे ह्यन्वयं प्रपित्सुर्न्यायप्राप्ततया विशेषणेऽन्वेति, ततश्च कर्त्तर्यन्वयं प्रपित्सुः कृतावन्वयं प्रपद्यत इति सारांशः।

अनुवाद—तुमुन् का अर्थ है इच्छावान्। 'भोक्तुं व्रजति' का अर्थ हुआ 'भोजनेच्छावान् व्रजति'। 'भोक्तुमिच्छति' इत्यादिस्थलमें तुमुन् प्रत्यय कर्त्ता अर्थमें लाक्षणिक है। 'भोजनकर्त्तारमात्मानमिच्छति' यह बोध होता है। 'सविशेषणे हि अन्वयं लभमानो विशेषणान्वयद्वारा सविशेषणेऽन्वेति' इस न्यायसे कर्त्तामें विशेषणीभूतकृतिमें इष्धात्वर्थ इच्छा का अन्वय होता है।

प्रकृतधात्वर्थकर्त्ता शतृशानचोः, धात्वर्थजन्यफलवान् कर्म शानचोऽर्थः। शत्रादीनां कर्त्ता वाच्यः, सविषयकार्थकप्रकृतिकानाम् आश्रयत्वे लक्षणा। एव कर्त्तृकर्मकृतां तेन तेन रूपेण कर्त्ता कर्म च वाच्यम्। भावकृतान्तु नञ्यञादीनां प्रयोगसाधुत्वमात्रम्, धात्वर्थातिरिक्तस्य भावकृताऽनुपस्थापनादिति।

व्याख्या—प्रकृतः शतृशानचोः प्रत्ययोः प्रकृतित्वञ्चतः, आत्मनेपदिधातोः शानच्, परस्मैपदिनः शतेति व्यवस्थानुरोधेनेत्थमुक्तम्। एतच्च कर्तृप्रत्ययस्थलाभिप्रायम्, कर्मप्रत्यये त्वन्यथा व्यवस्थेत्याह—धात्वर्थेति०। सविषयकार्थकप्रकृतिकानाम्—येषां धातूनां ज्ञानमिच्छा चार्थस्तेषामिति भावः। कर्तृकर्मकृताम्—कर्मकर्त्तरि जातानां कृत्प्रत्ययानाम्, तेन तेन रूपेण—कर्मणि प्रत्यये कर्मत्वेन रूपेण कर्मवाच्यम्, कर्त्तरि प्रत्यये कर्तृत्वेन रूपेण कर्त्ता वाच्यः (न तु कर्मकर्तृत्वरूपेण कर्त्ता वाऽभिधीयत इत्याशयः)।

अनुवाद—प्रकृतिभूतधात्वर्थकर्त्ता शतृ और शानच् का अर्थ होता है। कर्मप्रत्ययस्थलमें धात्वर्थजन्यफलवान् कर्म शानच्का अर्थ होता है। शत्रादि प्रत्ययोंका कर्त्ता अर्थ है। सविषयकार्थक प्रकृतिक (ज्ञा इष्) धातुओंके शत्रादिकी आश्रयत्वमें लक्षणा

होती है। कर्तृकर्मस्थलमें कृत् प्रत्ययों का कर्तृत्वेन रूपेण कर्ता और कर्मत्वेन रूपेण कर्म अर्थ होता है। भावमें होनेवाले नञ् घञ् आदि कृत्प्रत्ययप्रयोग साधुत्वमात्रार्थक हैं, क्योंकि धात्वर्थके अतिरिक्त किसी अर्थको भावकृत् नहीं बताते हैं [भावमें हुए कृत् भावातिरिक्तको बता नहीं सकते हैं, भाव हुआ धात्वर्थ, अतः उनको प्रयोग-साधुत्वमात्रार्थक माना जाता है]

ननु 'नीलं घटमानय' इत्यादौ द्वितीयाद्वयश्रवणात् कर्मद्वयबोधापत्तिः; न तु विशिष्टस्य कर्मत्वमिति चेत्, न, अत्र विशेषणविभक्तिः साधुत्वाय। अथवा विशेषणविभक्तेरभेदोऽर्थः। अत्रायं विशेषः—द्वितीयपक्षे वाक्यसमासयोः पर्यायता न घटते, वाक्ये 'नीलं घटम्' इत्यादावभेदस्य पदार्थत्वे प्रकारत्वात् न संसर्गत्वम्, 'नीलघटम्' इत्यादौ कर्मधारये लक्षणाया अस्वीकारेणाभेदस्यापदार्थत्वेन संसर्गत्वात्। तथा च वाक्यसमासयोः पर्यायानुरोधेन षष्ठीसमासे 'राजपुरुष' इत्यादौ षष्ठ्यर्थसम्बन्धे लक्षणा न घटते, सम्बन्धस्य संसर्गमर्यादालभ्यत्वात्।

व्याख्या—द्वितीयाद्वयश्रवणात्—नीलपदे घटपदे च द्वितीयाश्रुतेः। विशेषणविभक्तिः=नीलपदोत्तरद्वितीयाविभक्तिः। द्वितीयपक्षे—विशेषणविभक्तेरभेदार्थत्वपक्षे। पदार्थत्वेन = अमर्थत्वेन शक्तं पदमिति परिभाषितत्वेनाभेदस्यान्न पदार्थता बोध्या। लक्षणास्वीकारे तु तस्यापि पदप्रतिपाद्यत्वेन पदार्थत्वं स्यात् तदाह—लक्षणाया इति। स्पष्टमन्यत्।

अनुवाद—शङ्का-'नीलं घटमानय' इत्यादिस्थलमें दो द्वितीयाके सुने जानेसे दो कर्मका बोध होना चाहिये, विशिष्टका कर्मत्व नहीं होना चाहिये। उत्तर—विशेषण-विभक्ति केवल साधुत्वार्थक होती है (तब दो कर्मका प्रश्न ही नहीं उठता है') अथवा विशेषणविभक्तिका अभेद अर्थ है। अब यहाँ इतना विशेष पकता है। विशेषणविभक्तिके अभेदार्थक होने पर वाक्य और समासमें पर्यायता-तुल्यार्थत्व-नहीं होगा क्योंकि वाक्यमें 'नीलम् घटम्' इत्यादिस्थलमें अभेदोपस्थापित अभेद प्रकार होगा संसर्ग नहीं होगा क्योंकि वह पदार्थ हुआ, और 'नीलघटम्' इस कर्मधारयमें लक्षणा नहीं मानी जाती है। अतः अभेद अपदार्थ होनेके कारण संसर्ग होगा। अतः वाक्य और समासमें पर्यायता नहीं होगी। इस स्थितिमें वाक्य और समासमें पर्यायता हो इस अनुरोधसे 'राजपुरुषः' इत्यादि षष्ठीसमासमें पूर्वपदकी सम्बन्धमें लक्षणा मानना असङ्गत हो जायगा क्योंकि संसर्ग तो संसर्गमर्यादासे ही लभ्य है, उसके लिये लक्षणाकी क्या आवश्यकता है।

वस्तुतस्तु विरुद्धविभक्त्यनवरुद्धस्य अभेदबोधकत्वव्युत्पत्तेः मुख्यार्थराजाभेदस्य बाधेन राजपदस्य राजसम्बन्धिनि लक्षणा। एवं बहुव्रीहौ चरमपदस्यान्यपदार्थे लक्षणा। तथा च द्वन्द्वकर्मधारयान्य-समासे सर्वत्र तत्तदर्थे लक्षणा।

व्याख्या—विरुद्धविभक्तिः—असजातीयविभक्तिः, साजात्यञ्चात्र प्रथमात्वा-दिना बोध्यम्। मुख्यार्थराजाभेदस्य राजपदमुख्यार्थराजार्थेन पुरुषपदार्थाभेदस्य। चरमपदस्य—उत्तरपदस्य। अत्रोत्तरपदत्वं मध्यमत्वानाक्रान्तं विवक्षितम्।

अनुवाद—विरुद्ध विभक्तिसे रहित होने पर ही विशेषणसे अभेदकी उपस्थिति होती है, अतः राजपुरुष पदघटक राजपदके मुख्यार्थके साथ अभेद बाधित होनेके कारण राजपदकी राजसम्बन्धी अर्थमें लक्षणा है। यही वास्तविक मार्ग है। इसी तरह बहुव्रीहिमें चरमपदकी अन्यपदार्थमें लक्षणा होती है। फलतः यही कहना चाहिये कि द्वन्द्वकर्मधारयातिरिक्त समासमें सर्वत्र यथायोग्य तत्तदर्थमें लक्षणा होती है।

एवं नञर्थोऽभावः। 'अघटं भूतलम्' इत्यादौ घटभिन्ने लक्षणा। 'न कलञ्जं भक्षयेत्' इत्यादौ बलवदनिष्टजनके लक्षणा।

व्याख्या—अभावः—अन्योन्याभावरूपः। घटभिन्ने—घटप्रतियोगिकभेदवति। बलवदनिष्टजनके नञो लक्षणा, तेन कलञ्जभक्षणं बलवदनिष्टजनकमित्यर्थः फलति।

अनुवाद—इसी तरह नञ्का अभाव अर्थ है। 'अघटं भूतलम्' इत्यादि स्थलमें घट भिन्नमें लक्षणा है। 'न कलञ्जं भक्षयेत' इत्यादि स्थलमें बलवदनिष्ट जनकमें लक्षणा है।

क्रियासङ्गतस्यैवकारस्यात्यन्तायोगव्यवच्छेदोऽर्थः, यथा 'नीलं सरोजं भवत्येव'। विशेषणसङ्गतस्य अयोगव्यवच्छेदः, यथा 'शङ्खः पाण्डुर एव'। विशेषण्यसङ्गतस्य अन्ययोगव्यवच्छेदः, यथा—'पार्थ एव धनुर्धरः' इत्यादौ। एवं दिशा सर्वत्र बोध्यम्।

इति महामहोपाध्यायजगदीशभट्टाचार्यविरचितं
'तर्कामृतं' समाप्तम्।

व्याख्या—'नीलं सरोजं भवत्येव' इत्यत्र सरोजे नीलत्वस्यात्यन्तायोगो व्यवच्छिद्यते—शाश्वतिकोऽसम्बन्धो व्यावर्त्यते, ततश्च नीलत्वस्य सरोजसम्बन्धोऽपि सम्भवित्वमुपैति। अयोगव्यवच्छेदश्च नित्यसम्बन्धस्य पर्यवस्यति, तेन पाण्डुरत्वस्य शङ्खे नित्यसम्बन्धोऽवस्थाप्यते। अन्ययोगव्यवच्छेदः—तदितरावृत्तित्वरूपः, तेन पार्थं एवेत्यत्र पार्थेतरावृत्तिधनुर्धरत्ववान् पार्थ इति बोधः।

अनुवाद—क्रियासङ्गत एवकारका अत्यन्तायोगव्यवच्छेद अर्थ होता है, उदाहरण—'नीलं सरोजं भवत्येव'। विशेषणसङ्गत एवकारका अयोगव्यवच्छेद अर्थ है, यथा—'शङ्खः पाण्डुर एव'। विशेष्यसङ्गत एवकारका अन्ययोगव्यवच्छेद अर्थ है, यथा—'पार्थ एव धनुर्धरः'। इसी तरह सर्वत्र जानना चाहिये।

यो जातो धरणीसुरान्वयसरोहंसात् प्रसर्पद्यशो-
ज्योत्स्नाद्योतितदिङ्मुखान्मुररिपुध्यानैकबद्धाशयात्।
मिश्राख्यात् 'मधुसूदना' 'ज्जयमणौ' सीमन्तिनीनां मणौ
तस्य श्रीयुतरामचन्द्रसुधियो व्याख्या प्रसिद्धयादियम् ॥ १ ॥

इति मुजफ्फरपुरमण्डलान्तःपाति'पकडी'संज्ञकसंवसथवासिव्याकरण-साहित्यवेदान्ताचार्याद्युपाधिप्रसाधिमैथिलपण्डित–श्रीरामचन्द्र-मिश्रशर्मप्रणीता तर्कामृत 'प्रकाश' व्याख्या समाप्ता।

परिशिष्टम्

परीक्षासेतुः

१. पदार्थनिरूपणं किमर्थम् ?

'आत्मा वा अरे द्रष्टव्य' इत्यनेनात्मदर्शनस्य मोक्षसाधनतोक्ता, तत्र श्रवणादीनि तत्त्वज्ञानजनकानीत्युक्तं भवति, श्रुतित आत्मश्रवणं कर्त्तव्यम्, मननञ्चात्मन इतरभिन्नत्वेनानुमानम्, तच्च भेदप्रतियोगीतरज्ञानसाध्यम्, तथा चेतरदेव कियत् ? इत्येतदर्थं पदार्थनिरूपणम् ।

२. पदार्थः कतिविधः ? पदार्थो द्विविधः, भावोऽभावश्च। भावः षड्विधः द्रव्यगुणकर्मसामान्यविशेषसमवायभेदात्। अभावो द्विविधः—संसर्गाभावोऽन्योन्याभावश्च। आद्यस्त्रिविधः—प्रागभावः, प्रध्वंसाभावः, अत्यन्ताभावश्च ।

३. द्रव्याणि कति ?—नव द्रव्याणि पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशकालदिगात्ममनांसि।

४. गुणाः कति ?—रूपादीनि चतुर्विंशतिर्गुणाः (मूले पश्यन्तु)

५. कुत्र कुत्र कति गुणाः—'वायोर्नवैकादश तेजसो गुणा जलक्षितिप्राणभृतां चतुर्दश । दिक्कालयोः पञ्च षडेव चाम्बरे महेश्वरेऽष्टौ मनसस्तथैव च' ॥ कुत्र कतीत्युक्तम् । के कुत्रेति मूले दृश्यताम् ।

६. द्रव्येषु के सावयवाः के चान्यथा ?

पृथिवीजलतेजोवायवो द्विविधाः, परमाणवः सावयवाश्च। आकाशकालात्मदिशो विभुरूपाः । मनः परमाणुरूपम् । तत्र सावयवा अनित्या इतराणि नित्यानि ।

७. आत्मा कतिविधः ?—आत्मा द्विविधः, जीवात्मा परमात्मा च । तत्र जीवात्मानः प्रतिशरीरं भिन्नाः, बन्धमोक्षयोग्याः, परमात्मा ईश्वरः ।

८. कानि द्रव्याणि प्रत्यक्षाणि ?—परमाणुद्वयणुके अप्रत्यक्षे । महदुद्भूतरूपत्वं यत्र तानि पृथिवीजलतेजांसि प्रत्यक्षाणि, आत्मा च प्रत्यक्षः । वाय्वाकाशकालदिङ्मनांसि त्वप्रत्यक्षाणि ।

९. का द्रव्योत्पत्तिप्रक्रिया ? कारणवत उत्पत्तिः, तत्र परमाणुद्वयसंयोगात् द्वयणुकमुत्पद्यते, संयुक्तद्वयणुकात्त्रसरेणुः, एवं चतुरणुकादिकपालानाम्, कपालद्वयसंयोगेनान्त्यावयवी घटः ।

१०. कारणत्वं किम् ? तानि कति ? किंलक्षणानि च ?

अनन्यथासिद्धनियतपूर्ववर्त्ति कारणम् । त्रिविधानि कारणानि, समवायिकारणासमवायिकारणनिमित्तकारणभेदात् ।

यत्समवेतं कार्यमुत्पद्यते तत्समवायिकारणम्, यथा परमाणुः द्वयणुकस्य, कपालं घटस्य । समवायिकारणे सम्बद्धं कारणमसमवायिकारणम् । यथा कपालरूपं घटरूपस्य । एतदुभयकारणभिन्नं निमित्तकारणम्, यथा द्वयणुके ईश्वरः, घटे दण्डः ।

११. द्रव्ये किं प्रमाणम् ? प्रत्यक्षद्रव्ये प्रत्यक्षं प्रमाणमतीन्द्रियेऽनुमानं प्रमाणम् । परमाणुद्वयणुकानुमानं यथा—त्रसरेणुः सावयवद्रव्यावयवारब्धः, बहिरिन्द्रियवेद्यद्रव्यत्वात्, यद् बहिरिन्द्रियवेद्यद्रव्यम् तत्सावयवद्रव्यारब्धम्, यथा घटः ।

१२. आत्मनि किं प्रमाणम्? आत्मा द्विविध इत्युक्तम्, अहं सुखीत्यादिप्रत्यक्षमात्मनि प्रमाणम् । ईश्वरे चानुमानम्, तद्यथा—क्षितिः सकर्तृका, कार्यत्वाद् घटवत् ।

१३. कीदृशी द्रव्यनाशप्रक्रिया ?

द्रव्यनाशो द्विविधः, क्वचिदसमवायिकारणनाशात् क्वचित् समवायिकारणनाशाच्च । तत्राद्यो यथा—परमाणुद्वयसंयोगनाशाद् द्वयणुकनाशः, द्वितीयो यथा—कपालनाशाद् घटनाशः ।

१४. के विशेषगुणाः ?—'रूपं गन्धो रसः स्पर्शः स्नेहः सांसिद्धिको द्रवः । बुद्ध्यादिभावनान्ताश्च शब्दो वैशेषिका गुणाः' ॥

१५. के सामान्यगुणाः ? संख्यापरिमाणपृथक्त्वसंयोगविभागगुरुत्वनैमित्तिकद्रवत्ववेगस्थितिस्थापकाः ।

१६. विभागः कतिविधः ? विभागस्त्रिविधः, अन्यतरकर्मजः, उभयकर्मजः, विभागजश्च । आद्यो यथा—मनःकर्मणाऽऽत्ममनसोर्विभागः, द्वितीयो यथा—मेषयोः कर्मणा तयोर्विभागः, विभागजविभागो द्विविधः—कारणमात्रविभागजः, कारणाकारणविभागजश्च । आद्यः—कपालकर्मणा कपालद्वयविभागः, द्वितीयः करतरुविभागात् कायतरुविभागः ।

१७. यथार्थायथार्थज्ञाने लक्षयित्वोदाहरत ।

(१) तद्वति तत्प्रकारकोऽनुभवो यथार्थः, यथा 'रजते इदं रजतम्' इति ज्ञानम् ।

(२) तदभाववति तत्प्रकारकोऽनुभवोऽयथार्थः, यथा 'शुक्तौ इदं रजतम्' इति ।

१८. संस्कारः कतिविधः ? त्रिविधः, वेगो, भावना, स्थितिस्थापकश्च ।

वेगः—वेगेन बाणश्चलतीति ।

भावना—विशिष्टज्ञानज्ञानजन्य आत्ममात्रवृत्तिः ।

स्थितिस्थापकः—कटादिवृत्तिस्तदवस्थताऽऽपादकः ।

१९. सामान्यं किम् ? कतिविधञ्च ?

नित्यमनेकानुगतं सामान्यम् । सामान्यं त्रिविधम्—व्यापकम्, व्याप्यम्, व्याप्यव्यापकं च । व्यापकसामान्यं—सत्ता, व्याप्यसामान्यं घटत्वादि, व्याप्यव्यापकं च द्रव्यत्वादि ।

२०. कति प्रमाणानि ? कानि च तेषां प्रत्येकं लक्षणानि ?

प्रत्यक्षानुमानोपमानशब्दभेदात् चत्वारि प्रमाणानि । तत्र प्रत्यक्षं द्विविधं, निर्विकल्पकं सविकल्पकं च । इन्द्रियार्थसन्निकर्षजन्यं ज्ञानं प्रत्यक्षम् । सन्निकर्षो लौकिकोऽलौकिकश्च । अनुमितिकरणमनुमानम् । उपमितिकरणमुपमानम् । आप्तवाक्यं शब्दः ।

२१. ज्ञानानां स्वतः प्रामाण्यं परतो वा ?

परतो ज्ञानानां प्रामाण्यं तच्चानुमानात्, तदाकारश्चेदं ज्ञानं प्रमा समर्थंप्रवृत्ति-जनकत्वात्, ज्ञानान्तरवत्। स्वतः प्रामाण्यमिति त्रयोऽपि मीमांसकाः। गुरुमते 'अयं घट' इति ज्ञानं विषयम् आत्मानं प्रामाण्यं च गृह्णाति। मुरारिमिश्रमते—'अयं घट' इति ज्ञानानन्तरं 'घटमहं जानामी'त्यनुव्यवसायः, तेनैव प्रामाण्यग्रहः। भट्टमते ज्ञानं यथाऽनुमेयं तथैव तद्वृत्ति प्रामाण्यमप्यनुमेयम्।

२२ अनुमानस्वरूपं निरुच्यताम्। अनुमितिकरणमनुमानम्, अनुमितित्वं जातिः। व्यापारवत् कारणं करणम्, हेतुज्ञानादि करणं परामर्शो व्यापारः, परामर्शश्च व्याप्तिविशिष्टपक्षधर्मताज्ञानं यथा 'वह्निव्याप्यधूमवानयम्'।

२३. व्याप्तिलक्षणं परिष्क्रियताम्?

हेतुसमानाधिकरणात्यन्ताभावाप्रतियोगिसाध्यसामानाधिकरण्यं व्याप्तिः। न च संयोगवान् द्रव्यत्वादित्यत्राव्याप्तिः, प्रतियोगिव्यधिकरणहेतुसमानाधिकरणेति निवेशनात्। 000454

२४. अनुमानं कतिविधम्? केवलान्वयि—केवलव्यतिरेकि-अन्वयव्यतिरेकिभेदादनुमानं त्रिधा। यस्य साध्यव्यतिरेको न कुत्राप्यस्ति स केवलान्वयी, यथा—'घटोऽभिधेयः प्रमेयत्वात्'। यत्र साध्यप्रसिद्धिः पक्षव्यतिरिक्ते नास्ति स केवलव्यतिरेकी, यथा—'पृथिवी इतरेभ्यो भिद्यते पृथिवीत्वात्'। यत्र साध्यं साध्याभावश्चान्यत्र प्रसिद्धः सोऽन्वयव्यतिरेकी, यथा—'पर्वतो वह्निमान् धूमात्'। स्वार्थानुमानपरार्थानुमानभेदेनानुमानद्वैविध्यं तु प्रसिद्धमेव।

२५, कति हेत्वाभासाः? कानि च तेषां लक्षणानि?

सव्यभिचारविरुद्धसत्प्रतिपक्षासिद्धबाधिताः पंच हेत्वाभासाः। सव्यभिचारस्त्रिविधः, साधारणासाधारणानुपसंहारिभेदात्। साध्याभाववद्वृत्तित्वं साधारणत्वम्, 'धूमवान् वह्नेः'। सकलसपक्षव्यावृत्तत्वमसाधारणत्वम्, 'पर्वतो वह्निमान् पर्वतत्वात्'। सर्वपक्षकत्वमनुपसंहारित्वम्, यथा—'सर्वं प्रमेयम्, अभिधेयत्वात्'। साध्याभावव्याप्तो हेतुर्विरुद्धः, 'यथा घटो नित्यः सावयवत्वात्'। सत्प्रतिपक्षो यथा—'पर्वतो

वह्निमान् धूमात्' पर्वतो वह्न्यभाववान् महानसान्यत्वात्। असिद्धस्त्रिविधः—आश्रयासिद्धः, स्वरूपासिद्धः, व्याप्यत्वासिद्धश्च। यत्र पक्षोऽसन् स आश्रयासिद्धः, यथा—'शशविषाणं नित्यमजन्यत्वात्'। यत्र पक्षावृत्तिर्हेतुः सः स्वरूपासिद्धः यथा 'पर्वतो वह्निमान् महानसत्वात्'। बाधो यथा—'जलह्रदो वह्निमान् द्रव्यत्वात्'।

२६. उपमानं लक्षयित्वोदाहरत।

उपमितिकरणमुपमानम्, संज्ञासंज्ञिसम्बन्धज्ञानमुपमितिः। गोसदृशो गवय इति जानन् वनं गतो गोसदृशं प्राणिनं दृष्ट्वा गवयोऽयमिति यदवैति तदुपमानम्।

२७. शब्दलक्षणमुक्त्वा वाक्यार्थज्ञाने सहकारिकारणानि निरुच्यन्ताम्।

आप्तोक्तः शब्दः प्रमाणम्। प्रकृतवाक्यार्थगोचरयथार्थज्ञानवानाप्तः। पदज्ञानं करणम्, पदार्थोपस्थितिर्व्यापारः। फलं शाब्दबोधः। आकाङ्क्षायोग्यताऽऽसत्तितात्पर्यज्ञानानि सहकारीणि। स्वरूपयोग्यत्वे सति अजनितान्वयबोधकत्वमाकाङ्क्षा, तेन 'घटः कर्मत्वम् आनयनं कृतिरि'त्यतो नान्वयबोधः। 'अयमेति पुत्रो राज्ञः पुरुषोऽपसार्यताम्' इत्यत्रापि न बोध आद्ये स्वरूपायोग्यत्वादन्त्ये पुत्रेण जनितान्वयबोधकत्वात्। बाधकप्रमाविरहो योग्यता, तेन वह्निनासिञ्चतीत्यत्र नान्वयबोधः। अव्यवधानेनान्वयप्रतियोग्युपस्थितिरासत्तिः। तेन 'गिरिर्भुक्तं वह्निमान् देवदत्तः' इत्यतो गिरिर्वह्निमान् इति बोधो न। तत्तदर्थप्रतीतीच्छयोच्चरितत्वं तात्पर्यं तेन भोजनप्रकरणोच्चरितसैन्धवपदतोऽश्वबोधो न। तदेवं प्रश्ना ऊह्याः। सर्वेषां प्रश्नानामत्र निर्देशे पुस्तकमपि गतार्थं स्यादतः प्रधानप्रश्ना एवात्र निर्दिष्टाः।

शमिति

कतिपय परीक्षोपयोगी प्रकाशन

१ रघुवंशमहाकाव्य प्र० सर्ग। 'चन्द्रकला' सं० हि० व्या०—शेषराज शर्मा ३-००
२ रघुवंशमहाकाव्यम्। 'विमला' संस्कृत-हिन्दी व्याख्या श्रीकृष्णमणि त्रिपाठी
द्वितीय ३-२५ तृतीय ३-००, ४-५ ६-००, ६-७ ६-०० १३-१४ ६-००
३ हितोपदेश : मित्रलाभ। 'चन्द्रकला' सं० हि० टीका—श्रीशेषराज शर्मा ६-५०
४ लघुसिद्धान्तकौमुदी। 'शिवाख्य' सं० हि० टीका—गोमतीप्रसाद शास्त्री १२-००
५ तर्कसंग्रह—पदकृत्य। हिन्दी टीका सहित—श्री शेषराज शर्मा रेग्मी ५-००
६ दशकुमार-पूर्वपीठिका। परीक्षोपयोगि 'विमला' संस्कृत-हिन्दी व्याख्या
सहित। व्याख्याकार—पं० श्रीकृष्णमणि त्रिपाठी ६-००
७ कुमारसम्भव। 'विमला' संस्कृत-हिन्दी टीका—श्रीकृष्णमणि त्रिपाठी
१-२ सर्ग ५-५० तृ० सर्ग २-२५ चतुर्थ सर्ग २-२५ पञ्चम सर्ग ३-२५
८ स्वप्नवासवदत्ता। 'चन्द्रकला' सं० हि० टीका—श्रीशेषराजशर्मा रेग्मी १०-००
९ नीतिशतकम्। 'विमला' संस्कृत-हिन्दी व्याख्या सहित—कृष्णमणित्रिपाठी ५-५०
१० पञ्चतन्त्र। अपरीक्षितकारक। 'विमला' सं. हि. टीका। श्रीकृष्णमणि त्रि० ६-५०
११ संस्कृत-व्याकरणम्। (अनु० खंड-निबन्ध खण्ड सहित)—पं० रामचन्द्र झा १०-००
१२ सांख्यकारिका। 'सांख्यप्रकाश' सं.हि. टीका सहित। श्रीकृष्णमणित्रिपाठी ७-००
१३ वेदान्तसार। 'भावबोधिनी' सं० हि० टीका—श्रीरामशरण त्रिपाठी ९-००
१४ मेघदूत। 'चन्द्रकला' सं० हि० टीका—श्रीशेषराज शर्मा रेग्मी १४-००
१५ रामाभ्युदययात्रा। सं० हि० टीका सहित—श्रीरुद्रप्रसाद अवस्थी ७-००
१६ शिशुपालवध। सं० हि० टीका सहित। रामजीलाल शर्मा १-४ सर्ग १५-००
१७ वक्रोक्ति। 'चन्द्रकला' हि० टीका सहित—डॉ० भोलाशंकर व्यास २०-००
१८ साहित्यदर्पण। 'शशिकला' हिन्दी टीका १-६ परि० ३५-००, ७-१० परि २०-००
१९ काव्यप्रकाश। 'चन्द्रकला' हिन्दी टीका—डॉ० सत्यव्रत सिंह ४०-००
२० भट्टिमहाकाव्य। सान्वय संस्कृत-हिन्दी व्याख्या सहित। श्रीगोपालशास्त्री
'दर्शनकेशरी' १-४ सर्ग १०-०० ५-८ सर्ग १०-०० एवं १४-२२ सर्ग १५-००
२१ नैषधमहाकाव्य। 'चन्द्रकला' संस्कृत-हिन्दी व्याख्या सहित। श्रीशेषराजशर्मा
प्र० सर्ग ८-००, १-३ सर्ग १८-०० १-५ सर्ग २७-०० १-९ सर्ग ४५-००
२२ छन्दोमञ्जरी। (प्रमाणिक-संस्करण)। 'सुषमा'-'सफला' संस्कृत-
हिन्दी व्याख्या युक्त। व्याख्याकार—डॉ० ब्रह्मानन्द त्रिपाठी ८-००
२३ किरातार्जुनीयम्। 'विजया' संस्कृत-हिन्दी व्याख्या, परीक्षोपयोगि
संस्करण। डॉ० ब्रह्मानन्द त्रिपाठी। द्वितीय सर्ग २ २५ ३-६ सर्ग ७-००
२४ प्रस्तावरत्नाकर। परीक्षोपयोगि निबन्ध संग्रह। डॉ० ब्रह्मानन्द त्रिपाठी ७-५०
२५ अनुवादचन्द्रिका। (सर्वांगपूर्ण संस्करण) डॉ० ब्रह्मानन्द त्रिपाठी १५-००